आजकल

नवम्बर, 1983

एक रुपया

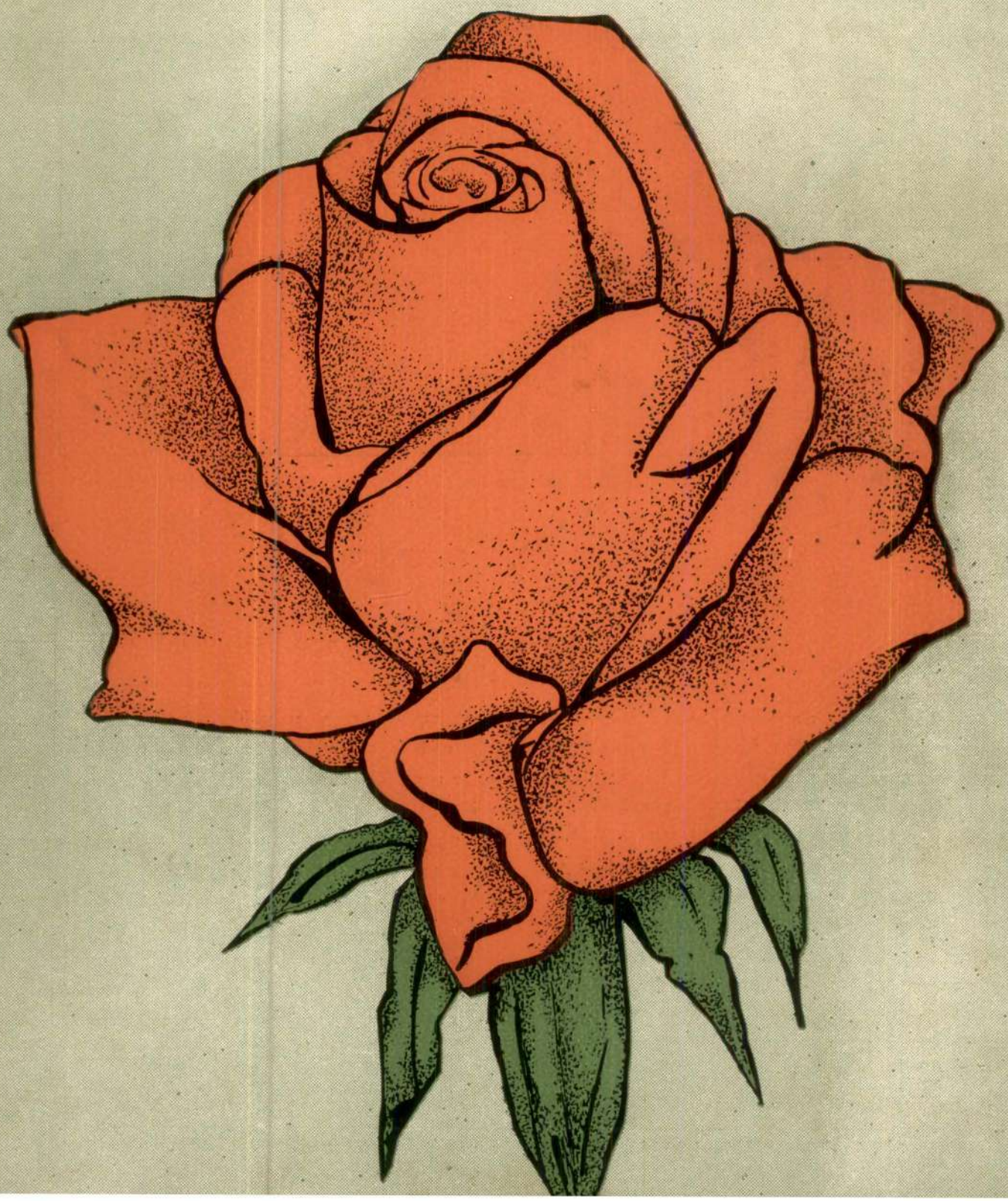

नाटक मंद बुद्धि बच्चों का

★ अवधेश नारायण तिवारी

लखनऊ : "मन्द बुद्धि तथा विकलांग बच्चों के विकृत अंगों में स्वर, ताल लय के जरिये चेतनता लाई जा सकती है।" इसी मान्यता को लेकर प्रभात रिपर्टरी थियेटर ग्रुप ने एक प्रयोग किया। शायद पहली बार किसी ग्रुप ने प्रदेश में ऐसे बच्चों को लेकर एक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया। इस शिविर का संचालन भारतेन्दु नाटक अकादमी से प्रशिक्षित विनय पांडे किशी तथा भातखण्डे महाविद्यलय की छात्रा कु० परविन्दर कौर ने किया। उन्होंने 'जागृति विहार' से 25 ऐसे बच्चों को इस काम के लिए चुना, जिन्हें उनके आस-पास क्या हो रहा है इस बात का कोई एसहास न था, यहां तक कि खाने-पीने कपड़े पहनने तक का उन्हें कोई शऊर न था। लगभग महीने भर के संयुक्त प्रयास के बाद उनके विकृत अंगों में संचालन होने लगा। उनकी बुद्धि काम करने लगी। इसका सफल प्रदर्शन उन्होंने गत 19 अगस्त को मिनी रवीन्द्रालय में किया।

इस रंग के कथानक में उन्होंने 6 अगस्त 1945 में हुए हिरोशिमा में युद्ध व हिंसा के ताण्डव नृत्य को दर्शाया था। इस सफल प्रस्तुति में दोनों रंगकर्मियों के प्रतिबद्ध रंगधर्म के पथ के इस अनूठे, अनुपम, नवीन प्रयास में रचनात्मक जागरूकता प्रयोग धर्मिता, चेतनता, सतर्कता का परिचय देखने व सुनने को मिला। इस कथ्य की गम्भीरता को बच्चों ने भी बड़ी चुनौती के साथ स्वीकार कर सार्थक किया। यह प्रसंसनीय है।

मंच सज्जा, अभिनय, पार्श्ववं संगीत :प्रकाश योजना बेहतर थी। ऐसे प्रयोग रंगकर्मियों के लिए अपरिहार्य हैं, जो स्वर-संगीत की व्यापकता, सार्थकता. उपादेयता को परिलक्षित करते हैं। यह प्रयोग दोनों रंगकर्मियों के प्रयासों से सफल सिद्ध हुआ है।

—अहाता उमाशंकर. बड़ा चांद गंज, लखनऊ

निदेशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल आफसेट वर्क्स, नई दिल्ली-5 में मुद्रित।

आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

संपादक
नरेन्द्र सिन्हा

सहायक संपादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-संपादक
राधेश्याम भारद्वाज

व्यवस्थापक : लेख राज बत्रा

सहायक व्यवस्थापक : देवकी नन्दन त्रेहन

सहायक निदेशक (उत्पादन) : के. आर. कृष्णन

आवरण सज्जा : जीवन अडालजा

वर्ष 39; अंक 7; पूर्णांक 471; नवम्बर, 1983
(कार्तिक-अग्रहायण 1905)

सम्पादकीय : क्या मात्र कल्पना पुरुष है राम ?

लेख

4. नेहरू विचारधारा—वर्तमान संदर्भ में — गोपाल श्रीवास्तव
6. हिन्दी बाल साहित्य—एक विवेचन — मदन गोपाल शर्मा
7. ऐसे थे जवाहरलाल जी — गोपाल प्रसाद व्यास
13. काशी नागरीप्रचारणी सभा और हिन्दी — डा० रत्नाकर पांडेय
15. श्रीलंका में हिन्दी—एक विहंगम दृष्टि — डा० वीरेन्द्र शर्मा
15. सिक्खों की हिन्दी सेवा — गो० ला० पुरोहित
25. सार्वभौम जन चेतना में जीवन मूल्यों को खोजते कुमारिल स्वामी — विमला रस्तोगी
30. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन — डा० अंजलि तिवारी
32. बुन्देलखण्ड का राई लोक नृत्य — लक्ष्मी प्रसाद मिश्र
34. अंतरिक्ष में युगान्तर — वेद प्रकाश अरोड़ा
37. राम-रावण संघर्ष — डा० उषा बाला
40. दूरदर्शी राम — एस. गुरुमूर्ति

कहानी

17. रिपोर्ताज : आतंक के छत्तीस घंटे — राजी सेठ
27. गीध — प्रणय

21. कविताएं

पिता; फूला है सेमल का पेड़ तथा भीग रहा है पेड़ — दिविक रमेश
दिवाली — जगदीश चन्द्र शर्मा
जिन्दगी-जिन्दगी — मृदुला अरुण
क्या फर्क पड़ता है — पद्मआशा
उस पार — सुधांशु रंजन
गजल — मधुर नज्मी

39. पुस्तक समीक्षा

इसके अतिरिक्त वातायान, प्रतिक्रियाएं और रंगमंच आदि अन्य नियमित स्तम्भ ।

हर हाल में खुशहाल

छाया : सुभाष आहुजा

'आजकल' का चंदा

एक प्रति 1 रुपया, वार्षिक 10 रुपये. द्विवार्षिक 18 रुपये तथा त्रिवार्षिक 25 रुपये मात्र।

छात्रों और अध्यापकों के लिए चंदे में विशेष छूट। इसके लिए प्रमाणपत्र भेजना आवश्यक है।

विदेश में एक प्रति : 30 सेंट या 15 पेंस; वार्षिक : 3 डालर या 1.50 पौंड; द्विवार्षिक : 5.40 डालर या 2.70 पौंड; त्रिवार्षिक : 7.50 डालर या 3.75 पौंड।

'आजकल' के नियमित ग्राहकों को प्रकाशन विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 20 प्रतिशत छूट दी जाती है।

चंदे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता व्यापार व्यवस्थापक, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

संपादकीय पत्रव्यवहार : संपादक 'आजकल' (हिन्दी), पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 387069

आगामी अंक में

नाटकों पर विशिष्ट सामग्री

- ☐ देश के विभिन्न प्रदेशों से चुने हुए युवा कलाकार अब दिल्ली आते हैं और नाट्य-विद्यालय से प्रशिक्षण लेकर सीधे बम्बई की ओर रवाना हो जाते हैं। ऐसा क्यों ! . . .पढ़िये जयदेव तनेजा का विचारोत्तेजक लेख।
- ☐ साठोत्तर हिन्दी नाटक—कितनी वास्तविकता कितना शोर—डा० दुर्गा दीक्षित।
- ☐ सुप्रसिद्ध कवि एवं नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र की श्रेष्ठ काव्य कृति "कालजयी" पर स्व० आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी की संस्मरणात्मक समीक्षा।
- ☐ आज की पत्रकारिता पर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के विचार—गौरीशंकर गुप्त से बातचीत में।
- ☐ इसके अतिरिक्त कहानियां, कबिताएं वातायन और पुस्तक समीक्षा आदि नियमित स्तम्भ।

सम्पादकीय

क्या मात्र कल्पना पुरुष है राम ?

कहते हैं, जिस दिन राम रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटे थे, उस दिन अयोध्या की प्रजा ने अपने राजा की विजय पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए अपने घर-द्वार को दीपों से सजाया था, और तब से भारत वासी प्रतिवर्ष दीपावली मना कर उस गाथा-पुरुष की विजय-गाथा का स्मरण कर आह्लादित होते आये हैं। जाने कब से हम यह पर्व मनाते आये हैं, और राम हमारे अंतर्मन में इस प्रकार बस गया है कि आज के औद्योगिक युग में पर्वों-त्योहारों के प्रति सामान्य उदासीनता के बावजूद, लगता है, अगले सैकड़ों हजारों वर्षों में भी हमारे लिए राम, रामकथा और उससे संबंधित पर्वों-त्योहारों को भूलना सम्भव नहीं होगा।

राम हमारे रग-रग में रमा हुआ है, घट-घट व्यापी बना हुआ है, जाने कब से। किसी के लिए राम ही सृष्टिकर्ता है, किसी के लिए अतिमानव, किसी के लिए सारे मानवीय गुणों से विभूषित मर्यादा पुरुषोत्तम तो किसी के लिए मात्र एक मिथक पुरुष। आदिकवि ने उसे अतिमानव के रूप में देखा, तुलसी ने उसे अवतार माना तो मैथलीशरण गुप्त ने उससे यह पूछ कर कि "राम तुम ईश्वर हो मानव नहीं हो क्या" उसे एक पूर्ण मानव—आदर्श पुरुष के रूप में रुपायित किया। उसी प्रकार राम कथा के भी अलग-अलग जगहों पर अलग अलग रूप हैं। भारत में तो प्रसंगों में थोड़े हेरफेर के साथ एक ही कथा प्रचलित है, लेकिन, कहते हैं, इंदोनेशिया में तो सीता राम की पत्नी न होकर बहन हो गई है। पता नहीं वहां की रामकथा में लंका जलती है या नहीं। निश्चित तौर पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि आज की अयोध्या ही राम की राजधानी थी। पुरातत्वविदों की धारणा है कि राम का प्रार्दुभाव आज से प्रायः 4000 वर्ष पहले ताम्रयुग में हुआ था, जब आर्य सभ्यता सिंधु घाटी से हद से हद यमुना से आगे नहीं बढ़ पायी थी। तब आज की अयोध्या का राम की राजधानी होना कैसे संभव है? कोई पुरातत्वविद् राम की अयोध्या वर्तमान मथुरा के पश्चिम किसी नगर पर होने की अटकल लगाता है तो कोई पंजाब के मिंटगुमरी जिले में स्थित पासपत्तन में। इसी प्रकार रावण की लंका के बारे में भी मतभेद हैं। रामकथा सबसे पहले कब शुरू हुई, उसके बारे में भी निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। राम-कथा का सबसे पहले बखान करने वाला कवि बाल्मीकि को ही माना जाता है। लेकिन बाल्मीकि के पहले भी राम-कथा किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

अयोध्या के बारे में, लंका के बारे में, राम काल के बारे में इन सारे मतभेदों पर नजर डालें तो लगता है कि राम मात्र एक मिथक पुरुष था, लेकिन मिथकों का भी तो कोई न कोई, कहीं न कहीं आधार होता है। मिथकों का निर्माण भी हवा में नहीं होता।

तो क्या राम आदिकवि बाल्मीकि का कल्पना पुरुष मात्र है? यदि ऐसा ही हो तो भी यह एक अनूठी कल्पना है। शायद बाल्मीकि ने अपने युग—लगभग ई०पू० 200 वर्ष— की सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित और संतुलित रूप देने की दृष्टि से ही राम नाम के अतिमानव की कल्पना की हो। धन्य है यह कल्पना जिसने इस विशाल उपमहाद्वीप के जनमानस में घर कर उसे सृष्टिकर्ता तक बना डाला।

श्रद्धांजलि

गत 23 सितम्बर की रात्रि को श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के निधन से हिन्दी काव्य-जगत, नाट्य-लेखन तथा पत्रकारिता को अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखने वाले एक ऐसे समर्थ व्यक्ति की क्षति हुई जिसकी स्मृति भविष्य में लम्बी अवधि तक संजो कर रखी जाएगी।

सन 1927 में जन्मे सर्वेश्वर जी ने अपना साहित्यिक जीवन सन् 1947 के आसपास कवि के रूप में प्रारम्भ किया था। बाद में, तीसरे सप्तक के कवि के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की और तब से वह हिन्दी कविता को निरन्तर अपनी प्रतिभा से समृद्ध करते रहे थे। सन 1950 के आसपास वह प्रयाग की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'परिमल' से भी संबद्ध रहे थे। सन 1965 में अज्ञेय जी के संपादन काल में वह साप्ताहिक "दिनमान" के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हुए और पिछले कुछ महीनों से वह बाल-मासिक "पराग" का सम्पादन कर रहे थे। सर्वेश्वर जी मूलतः कवि थे, परन्तु उन्होंने अन्य विधाओं में भी रचना की। पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने नाटक और रंगमंच पर विशेष रूप से ध्यान देना शुरू किया था, तथा इस क्षेत्र में पर्याप्त यश भी अर्जित किया।

सर्वेश्वर उन साहित्यकारों में से थे जो साहित्य और राजनीति को एक दूसरे से अलग कर नहीं देख पाते थे। उनकी धारणा थी कि यदि साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है तो उसे सक्रिय राजनीति से जुड़ना होगा।

नाटककार के रूप में सर्वेश्वर जी ने आज के बिखरते जीवन-मूल्यों, बदलती सामाजिक व्यवस्था तथा गरीबी एवं बेरोजगारी को अपने नाटकों का विषय बना कर हिंदी नाट्य-लेखन को नई दिशा देने का प्रयत्न किया। 'आजकल' परिवार की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

नेहरू विचारधारा––वर्तमान संदर्भ में

गोपाल श्रीवास्तव

"शान से हमने हिन्दुस्तान को आजाद किया है, शान से हमें आगे बढ़ाना है। शान से हमें जो हिन्दुस्तान की आजादी की मशाल है, उसको लेकर आगे बढ़ना है। जब हमारे हाथ कमजोर हो जाएं तो औरों को देना है। ताकि नौजवान हाथ उसको उठायें और हम अपना काम पूरा करके चाहे खाक में मिल जाएं।"

ये शब्द हमारे राष्ट्रनिर्माता, युग दृष्टा, भारत के सच्चे सपूत, जनजन के नायक, बच्चों के चाचा नेहरू जी के हैं। समर्पण व देश प्रेम की जो मिसाल पण्डित नेहरू ने कायम की है उसकी पुनरावृत्ति असंभव है। आजादी के आन्दोलन से लेकर 17 वर्षों के प्रधानमंत्रित्व काल में जीवन भर वह देश सेवा, राष्ट्र प्रेम, तथा जनजन की समस्याओं के हित में लगे रहे। हर समय उन्हें देश के करोड़ों लोगों की चिन्ता थी। भारत की माटी से इतना प्रेम था कि अन्त में देश के प्रत्येक भाग में अपनी राख को विसर्जित करने की वसीयत की थी। नेहरू जी चाहते थे कि राष्ट्र निर्माण में लगे हाथ जब कमजोर हो जाएं तब प्रगति की व्यवस्था का काम नौजवानों के हाथों में सौंप दिया जाए। पर हमने देखा है कि देश के अनुभवी व बूढ़े राजनीतिज्ञ यह काम किसी को नहीं देना चाहते। भारत की संसद के इतिहास में पहला अवसर है जब इतने नौजवान हाथ युवा व जागरूक सांसद बन कर पहुंचे है। यह पण्डितजी के प्रति सच्ची श्रद्धा है। 1947 को लाल किले की प्राचीर से भाषण देते हुए उन्होंने अपने को "जनता का प्रथम सेवक" कहा था। सच ही वह प्रथम सेवक की तरह से ही पूरे जीवन भर देश सेवा करते रहे थे।

राष्ट्रीय एकता के प्रति वह हमेशा गंभीर रहे थे। आपने कहा था––"आप जो हिन्दुस्तान की औलाद हैं, हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं, चाहे आपका मजहब कुछ हो, सीमा या प्रान्त या सूबा कुछ हो, आखिर उस मशाल को शान से जलाए रखने का आपका एक फर्ज है। वह मशाल है आजादी की, अमन की, और सच्चाई की।" अमन के मसीहा के 15 अगस्त 1948 के ये शब्द आज भी कितने सार्थक हैं। आज हम सच्चाई, अमन, एकता के लिए प्रयत्नशील हैं।

क्षेत्रीयता तथा साम्प्रदायिकता को हवा देने वाले स्वार्थी तत्व घृणित तरीकों से अशान्ति फैलाने से बाज नहीं आ रहे। इसके बावजूद देश की बहुमुखी प्रगति हो रही है। होती रहेगी क्योंकि देश को नेहरू जैसे महान् नेताओं ने एक जीवन-दर्शन दिया है––एक दिशा दी है जो हमारे लिए प्रकाश स्तंभ सिद्ध हो रहा है। वर्तमान में असम, पंजाब, आदि की जो समस्याएं हैं उनको हल करने में नेहरू की विचारधारा सार्थक भूमिका निभा सकती है तथा हमें निश्चय ही निर्णायक मुद्दों पर पहुंचा सकती है।

नेहरू जी ने मेहनत को देश की सबसे बड़ी शक्ति माना था। उन्होंने कहा था ––"मुझे भारत के भविष्य में भरोसा है। आइन्दा इसकी शक्ति बढ़ेगी। एक बड़े देश की फौजी शक्ति भी आवश्यक है। ठीक है कि फौजी शक्ति भी होनी चाहिए, लेकिन असल ताकत होती है उसकी काम करने की शक्ति, मेहनत करने की शक्ति, अगर हम देश की गरीबी दूर करेंगे तो मेहनत करके। देश की आजादी आराम करने को नहीं मिली है। मेहनत करने का समय आया है।" आजाद भारत ने गत 35 वर्षों में जो अपना नक्शा बदला है, निर्माण कार्यों में जो सफलताएं प्राप्त की हैं वे कठोर श्रम के कारण ही सम्भव हो सकी हैं। नेहरू युग-द्रष्टा थे, भारत के भविष्य के प्रति आस्थावान् थे। नेहरू आम आदमी, देश के छोटे से छोटे आदमी की खुशहाली को देश की आजादी मानते थे। उनके विचारों से गांव का एक छोटा से छोटा आदमी जब तक पूरी तरह से खुशहाल नहीं हो जाता है, तब तक गांव आजाद नहीं हैं।

"हिन्दुस्तान को पूरे तौर से आजाद होना है, तो हिन्दुस्तान को अपने उन करोड़ों आदमियों की बेरोजगारी दूर करनी होगी। बीच की दीवारें जो मजहब के नाम से, जाति के नाम से, प्रान्त या सूबे के नाम से हैं उन्हें दूर करना है। अगर हिन्दुस्तान के किसी गांव में किसी हिन्दुस्तानी को, चाहे वह किसी भी जाति का है उसको चमार कहें, हरिजन कहें, अगर उसको चलने फिरने, रहने में खाने-पीने में वहां कोई रुकावट है तो वह गांव अभी आजाद नहीं हुआ है। वह गांव गिरा हुआ है।"

ऐसे लाखों गुलाम गांव आजादी के 35 वर्ष के बाद भी हमारे देश में हैं। कई स्थानों पर आज भी हरिजनों को सामयिक संरक्षण नहीं मिल पाता है। नेहरू जी देश के प्रत्येक नागरिक की आजादी चाहते थे। क्योंकि भारत कोई एक व्यक्ति या एक जगह नहीं है। भारत की पहचान है उसमें बसने वाले करोड़ों लोग उन करोड़ों की आजादी, खुशहाली सदा सरकार का प्रमुख विषय रहा है। नेहरू ने समय-समय पर देश की

प्रत्येक समस्या यहां तक की जो भविष्य में भी आ सकती थी, से निपटने का एक स्पष्ट रास्ता, दर्शाया है। इसी से उन्हें युग दृष्टा कहा गया था।

पंडित नेहरू एक जागरूक नेता ही नहीं, देश के उन नाजुक वर्षों में प्रधानमंत्री थे जब देश आजाद हुआ था। देश का

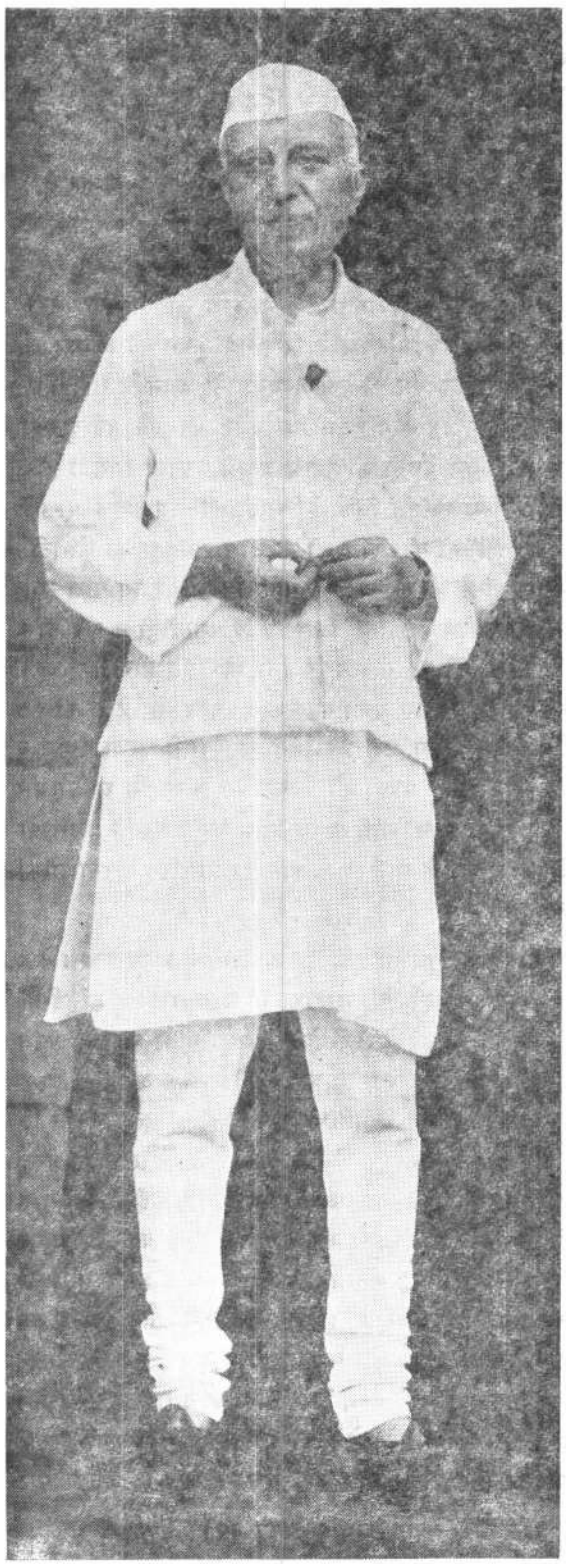

बंटवारा, बड़े पैमाने पर आजादी का तबादला और इस क्रम में होने वाले दंगे ये कुछ ऐसी भीषण समस्याएं एक साथ सामने आई कि देश विचलित हो सकता था। परन्तु नेहरू जैसे महान् नेता ने इस नाजुक समय पर देश को नेतृत्व प्रदान किया, देश के लोगों को कर्म के प्रति प्रेरित किया। "आराम हराम है" का नारा देकर नयी जागृति पैदा की। भारत की प्रगति का इतिहास देखें तो पता चलेगा कि नेहरू जी के प्रधानमंत्रित्व काल में देश ने आशातीत, आश्चर्यजनक प्रगति की।

1952 में आपने कहा था—"इस देश में हजारों काम हैं। हजार काम हम करेंगे, फिर भी हजारों बाकी रहेंगे। काम का अन्दाजा हम इस तरह से करें कि हमने कोई नयी इमारत बनायी, कोई नया स्कूल बनाया और कोई नया बड़ा काम किया है तो ठीक है लेकिन आखिर काम का अन्दाजा यह है कि इस मुल्क में ऐसे कितने लोग हैं जिनकी आंखों से आंसू बहते हैं, उनमें से कितने आंसू हमने पोंछे हैं। कितने आंसू हमने कम किये हैं। वह अन्दाजा है इस मुल्क की तरक्की का, न कि इमारतें जो बनायें या शानदार बात जो हम करें। आखिर यह मुल्क क्या है? यह हिमालय पहाड़ नहीं है, न कन्या कुमारी है। यह मुल्क है इसमें रहने वाले लोग मर्द, औरतें, व बच्चे। इस मुल्क की भलाई उन करोड़ों आदमियों की भलाई, बुराई है।"

नेहरू जी देश की प्रगति को आम आदमी की उन्नति मानते थे। देश की जनता की तकलीफों में कमी हो—वही देश का विकास है। नेहरू जी ने हर वह काम जो आम आदमी, भारत के छोटे से छोटे गाँव के छोटे से छोटे आदमी की उन्नति में सहायक हो करने में तत्परता दिखाई।

नेहरू जी की विचार धारा, उनके चिंतन, साहित्य, भाषण आदि को पुस्तकाकार पढ़ने या उन्हें संजोकर ग्रन्थालयों में रखना उनके प्रति सच्ची श्रद्धा नहीं है। संकल्पों के साथ उनके बताये मार्ग पर अनुसरण करना होगा। नेहरू जी ने भारत की जनता के जीवन, एवं समस्याओं पर चिन्तन किया था। अतः उनके विचारों में हम प्रत्येक वर्तमान समस्या का हल तलाश कर सकते हैं। हमारी सरकार आज भी जाने अनजाने उनकी विचारधारा को अमल में ला रही है।

नेहरू जी नहीं चाहते थे कि भारत एक वैसा देश समझा जाये जहां "अमीर मुल्क में गरीब लोग रहते हैं।" भारत सम्पन्न देश हो जहां सम्पन्न लोग रहते हैं।

"सांप सपेरों व जंगलों" के देश की पहचान खत्म कर आज हम प्रगतिशील राष्ट्रों की कतार में खड़े है। हमारी बात दुनिया में गंभीरता से सुनी जाती है, हमारी बात महत्वपूर्ण मानी जाती है। देश की समस्याएं आपसी बातचीत से, मेहनत से, श्रम से हल करने में भी हम असफल नहीं होंगे। वर्तमान स्थिति में देश को नेहरू-विचारधारा व चिन्तन की आवश्यकता है जिससे हम वर्तमान समस्याओं से छुटकारा पाकर देश को निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर करें।

—कार्तिक चौक, अन्दर किला
विदिशा (म०प्र०)

हिंदी बाल साहित्य : एक विवेचन

मदन गोपाल शर्मा

हिन्दी का बाल साहित्य सैकड़ों वर्षों की यात्रा करने के पश्चात् अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर सका है। इस यात्रा के दौरान यह अनेक मोड़ों से गुजरा है तथा हर नये मोड़ पर उसने बहुत कुछ नया पाने व पुराने में से कुछ खोने की स्थिति का सामना किया है। बच्चे के कोमल अव-चेतन मन पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखते हुए बाल साहित्य की उपादेयता पर सदैव से विचार-विमर्श होता रहा है। वैसे तो बाल साहित्य क्या हो, कैसा हो, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बहस काफी पुराने समय से हो रही है और सम्भवतः आगे भी होती रहेगी, पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बच्चों के लिए साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जो बच्चों के मनोविज्ञान व उनकी समझ को अच्छी तरह परखकर सुबोध व सरल भाषा में लिखा गया हो तथा वह उनके लिये मनोरंजक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक व जीवन विकास में सहायक सिद्ध हो। अच्छा बाल साहित्य सतत् साधना का परिणाम होता है। बच्चों पर आरोपित साहित्य लिखना सरल हो सकता है पर बच्चों के लिये वास्तव में महत्वपूर्ण व आदर्श साहित्य का सृजन आसान काम नहीं है। दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दी साहित्य जगत में बाल साहित्य को जो प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए थी वह अभी तक नहीं मिल पाई है। आमतौर पर यह अनुभव किया जाता रहा है कि अनेक लोग बच्चों के लिए लेखन को बच्चों का खेल समझते हैं। इस दृष्टि से सोचने वालों की कृपा का ही यह परिणाम है कि बाल साहित्य के नाम पर कई बार सचमुच बचकाना साहित्य पढ़ने को मिलता है। अतः आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि साहित्य में बाल साहित्य का सही स्वरूप निर्धारित किया जाये तथा उसे समुचित प्रतिष्ठा दिलाई जाये।

हिन्दी का प्राचीन बाल साहित्य संस्कृत की देन है। यह रुचिकर होने के साथ-साथ बच्चों के नैतिक उन्नयन में भी उपयोगी है। बालमन की कल्पना के अनुरूप परी-कथाएं व लोक-कथाएं, कौतूहलपूर्ण हैं तथा आज भी बच्चों में सर्वाधिक लोक प्रिय हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों ने भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। विचित्रता, विविधता और विशालता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य ने भी हिन्दी बाल साहित्य को प्रभावित किया है हालांकि सम्पूर्ण बाल साहित्य का स्रोत संस्कृत व प्राकृत व द्रविड़ भाषाओं में उपलब्ध साहित्य ही है। जातक कथाएं भी लोक शिक्षण व संस्कार निर्माण की दृष्टि से बाल साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आधुनिक युग में भी इन्हीं प्राचीन प्रसंगों के आधार पर लिखी गई बोध कथाएं बच्चों के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक व रुचिकर हैं। यदि प्राचीन बाल साहित्य को युगीन परिवेश के सन्दर्भ में पुनः लिखकर बच्चों के समक्ष नये रूप में प्रस्तुत किया जाए तो पहले की अपेक्षा और अधिक लोकप्रिय सिद्ध होगा तथा बच्चे उपदेश के बोझिलपन से भी मुक्ति पा सकेंगे।

कल के बच्चे और आज के बच्चे में बहुत अन्तर है। युग के विकास के साथ-साथ बच्चे की भाषा और समझ में भी विकास हुआ है, उसका कौतूहल व जिज्ञासाएं भी बढ़ी हैं। आज के बच्चे पुराने परम्परागत बाल साहित्य से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, उन्हें नये परिवेश में किये गये सृजन की आवश्यकता है जिसमें वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों के ज्ञान के साथ ही साथ साहस, विनोद, मनोरंजन व स्नेह की एक नई दुनिया भी चाहिए। आज बच्चों को केवल अच्छी पठनीय सामग्री ही नहीं चाहिए बल्कि विविध चित्रों से सज्जित अत्याकर्षक पुस्तकें भी चाहिएं। बच्चों की रुचि को ही बाल साहित्य की कसौटी कुछ अंशों में माना जा सकता है। यदि ऐसा साहित्य बाल साहित्य के नाम पर लिखा जाए, जिसे बच्चे पसन्द ही न करें तो बाल साहित्यकार का प्रयास सचमुच निरर्थक सिद्ध होगा। बच्चों की रुचि से तात्पर्य आम बच्चे की स्वस्थ रुचि से है। रुचि और मनोरंजन के नाम पर प्रकाशित होने वाली सस्ती पाकेट बुक्स व उपन्यास आदि बच्चों को दिग्भ्रमित करने में अपना योग दे रहे हैं। यह बाल साहित्य के नाम पर कलंक है। ऐसे प्रयास विशेषतः बच्चों के साहित्य के नाम पर प्रसारित करना लोकहित में नहीं है।

आधुनिक बाल साहित्य बहु आयामी है। स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी बाल साहित्य के भण्डार में असाधारण वृद्धि हुई है यह प्रसन्नता की बात है। बाल-गीत, शिशु गीत, नाटक, कविता, कहानी, लेख, जीवनियां, यात्रा वृत्त, संस्मरण आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं की रचनाएं बाल साहित्य में भी लिखी गई हैं तथा काफी कुछ लोक-प्रिय भी हुई हैं। पुस्तकों के प्रस्तुतीकरण तथा मुद्रण में भी आशातीत प्रगति हुई है तथा पुस्तक-मेलों में बच्चों की पुस्तकों की बिक्री भी बहुत बढ़ी है यह बाल साहित्य के प्रति लोक सम्मान का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिंदी में बच्चों की पत्रिकाएं हालांकि संख्या में कम हैं पर उनकी प्रसार संख्या बहुत है और वे काफी लोकप्रिय हैं। बाल पत्रिकाओं की प्रतीक्षा बच्चे ही नहीं, बड़े भी बड़ी उत्सुकता से करते हैं। अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं व समाचारपत्रों के साप्ताहिक परिशिष्टों के बाल स्तम्भ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, इनके पाठकों

(शेष पृष्ठ 12 पर)

ऐसे थे जवाहरलाल जी

हिण्डौन—मेरी ससुराल। वहां से आई एक चिट्ठी—नेहरूजी से मिलवा दो। लिखने वाले—मेरी पत्नी के दीक्षागुरु। कैसे टाला जा सकता था ?

तो, पंडित शिवकुमार जी पधारे। चरणों में काष्ठ की पादुकाएं। घुटनों-घुटनों धोती। शरीर पर एक लम्बी मिरजई। मस्तक पर चन्दन। गले में माला। सिर पर एक मटमैला सा एक मुडांसा। बताया उन्होंने कि पिछले बारह वर्षों से वह 'जवाहरायण' लिख रहे थे। उसकी प्रति नेहरूजी को भेंट करना चाह रहे हैं। पत्नी के नाते वह हमारे भी गुरु हैं। यह काम हमें करना ही चाहिए। इसके बिना गुरु-ऋण नहीं उतरेगा।

हमने 'जवाहरायण' के दर्शन किए तो सिर पकड़ लिया। पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर नेहरूजी के जो चित्र छपते थे, उन्हें पंडितजी ने काट-काट कर खुले पन्नों पर चिपका लिया था और उनके नीचे कविता के नाम पर अपनी करामात लिख छोड़ी थी।

अजीब मुसीबत थी कि यह करामात नेहरूजी को कैसे पेश की जाए। मैंने टालना चाहा, परन्तु कविजी नहीं टले। अन्यमनस्कता दिखलाई, उसका भी कोई असर नहीं हुआ। श्रीमतीजी बड़े श्रद्धाभाव से अपने गुरुजी की आवभगत में लगी थीं। सवेरे भांग छान कर पंडितजी यमुना स्नान को जाते और दोपहर मधुर और स्निग्ध पदार्थों का सेवन करके पौढ़ जाते। शाम को फिर छनती। भांग का नशा बिना मलाई-मिठाई के रंग नहीं लाता। उनकी पाठशाला में श्रीमती जी दर्जा दो तक पढ़ी भी थीं। उन्होंने ही हमारे फेरे पड़वाये थे। पत्नी को जो कुछ प्राप्त हुआ था, वह गुरु-प्रसाद ही था। वह दिन में चार बार गुरुजी का काम करने के लिए हमें कहती रहती थीं। पंडितजी के हमारे घर रहने और प्रसाद ग्रहण करने पर तो हमें कोई खास आपत्ति नहीं थी लेकिन सुबह से लेकर रात तक उनकी कविताओं को सुनते रहने का हमारा धीरज शेष होता जा रहा था। क्या करें और कैसे करें ?

हम हारे और पंडितजी जीते। एक दिन हमने नेहरूजी को पत्र लिख ही दिया कि ऐसे-ऐसे राजस्थान से आपके पुराने प्रेमी आए हैं और पुराने ढंग पर ही उन्होंने 'जवाहरायण' लिख डाली है। पिछले पन्द्रह दिनों से वह मेरे यहां विराजमान हैं। अगर आप इनकी कृति का स्पर्श-भर कर दें तो मैं अत्यंत अनुगृहीत रहूंगा।

तीसरे दिन ही उत्तर आ गया और उन्हें समय दे दिया गया। अब हमारे सामने एक और विकट समस्या पैदा हो गई कि इस महाग्रन्थ को भेंट योग्य कैसे बनाया जाए ? हमने खुले पृष्ठों को तरतीब से जमाया। ऊपर-नीचे पन्नों के आकार के दो लकड़ी के तख्ते लगाकर उन्हें लाल मखमल के कपड़े से वेष्ठित किया। फिर उन पर गोटा और कलाबा चढ़ाया ताकि पुस्तक नेहरूजी के हाथ में जाने योग्य तो हो जाए।

सवेरे पंडित जी के बाल कटवाए, शेव बनवाई। अपनी एक धोती और लम्बा कोट उन्हें धारण करने के लिए दिया। एक अंगवस्त्रम भी हमारे पास पड़ा हुआ था। वह धारण करवाया। यह सब तो पंडितजी ने स्वीकार कर लिया लेकिन काष्ठ पादुकाएं छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। कांग्रेस सेवा दल के कप्तान शाह जी की ड्यूटी लगाई कि वह उन्हें पहुंचाने की व्यवस्था कर दें।

खडाऊं खटकाते पंडितजी प्रधानमंत्री निवास पहुंचे। उन्हें तुरन्त बुलवा लिया गया। पंडितजी ने मंत्रोच्चार के साथ नेहरूजी को आशीर्वाद दिया और गुलाब के पुष्पों के साथ 'जवाहरायण' नेहरूजी को भेंट की। पुस्तक का वेष्ठन और पंडितजी की वेशभूषा-नेहरूजी की उत्सुकता जागी और कपड़े को खोलकर ज्यों उन्होंने चिपके हुए चित्र और कविताएं देखीं

गोपाल प्रसाद व्यास

तो मुस्करा दिये। अब पंडितजी अपनी कविताएं सुना रहे थे और नेहरूजी सुन रहे थे। नेहरूजी कभी-कभी ऐसे आनन्द भी ले लिया करते थे। परन्तु ऐसे कामों के लिए उनके पास दो-चार मिनट का ही समय रहा करता था। उन्होंने इन्दिराजी को आवाज दी और कहा-भई, पंडितजी की कुछ खातिर तो करो। कहकर वे उठ दिए।

लौटने पर पंडितजी ने हमें बताया कि उन्हें खुद इन्दिराजी ने काट-काट कर आम खिलाए। बड़े गदगद थे, हमारी पत्नी के गुरुजी महाराज। हमने मन ही मन नेहरूजी को धन्यवाद दिया कि हे राष्ट्रनायक, आपने पत्नी के सामने हमारी लज्जा रख ली।

लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं हुई। पंडितजी बहुत असंतुष्ट थे। कह रहे थे कि मैं भारत के सरताज और प्रधानमंत्री के यहां से भी खाली हाथ लौटा हूं। ब्राह्मण का ऐसा अनादर ! काव्य-कला की ऐसी उपेक्षा ! पुराने जमाने में किसी राजा-रईस को ऐसी कविताएं बनाकर भेंट करता तो वे जागीरें देते। हमारे जयपुर के महाराज ने बिहारी कवि को एक-एक दोहे पर एक-एक अशरफी भेंट की थी। जयपुर तो एक छोटी सी रियासत है। जवाहरलाल जी देशभर के राजा हैं। उन्होंने एक फूटी कौड़ी भी मेरे हाथ पर नहीं रखी।

पंडित जी को बहुत समझाया कि अब राजतंत्र नहीं प्रजातंत्र है। अब जागीरें नहीं मीठे बोल दिए जाते हैं। आप उन तक पहुंच गए और पुस्तक भेंट कर आए, यह कोई कम उपलब्धि है ? फिर इन्दिराजी के हाथ के आम तो बिरला, टाटा को भी नसीब नहीं होते। पंडितजी आप धन्य हो गए। लेकिन पंडित जी ऐसी निस्सार बातों में आने वाले नहीं थे। उन्होंने फिर हमारे घर आसन जमा लिया। अब क्या किया जाए ?

नेहरूजी के सचिवालय में एक महानुभाव मेरे अच्छे परिचित थे। मैंने हंस-हंस कर उन्हें अपनी कष्ट-कथा सुना दी और इससे निस्तार पाने के लिए कोई रास्ता निकालने की प्रार्थना की। रास्ता निकला। प्रधानमंत्री निवास से एक पत्र राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हीरालाल शास्त्री के पास भेजा गया। इसमें पंडितजी के नेहरूजी से मिलने और 'जवाहरायण' भेंट करने की बात लिखी गई और कहा गया कि यदि संभव हो तो पंडितजी की यथाशक्ति सेवा की जाए। सेवा यह हुई कि पंडित जी पहले एक प्राथमिक पाठशाला में हिन्दी, संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए और फिर प्रधानाध्यापक बना दिए गए।

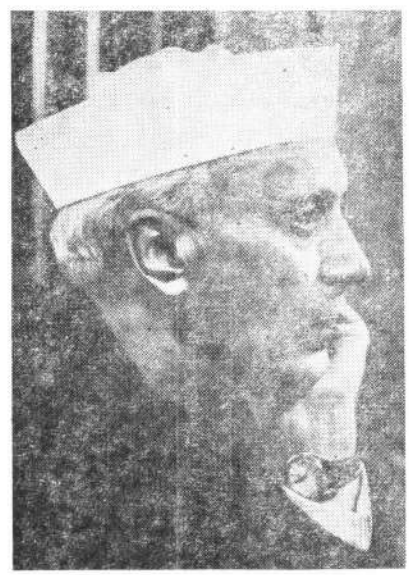

जब तक पंडितजी जीवित रहे तब तक जवाहरलाल जी की जय-जयकार करते रहे और साथ-साथ हमारी भी। ऐसे थे नेहरूजी कि जिनके पास देशी-विदेशी, बड़े-बड़े लोगों से मिलने के लिए भले ही समय की कमी हो लेकिन मुझ जैसे पत्रकार और कवि के अनुरोध पर सामान्यजनों को भी उपकृत कर दिया करते थे।

मेरा सौभाग्य है कि मैंने देश में उस समय जन्म लिया जब इतिहास तेजी से करवटें बदल रहा था। देशी राजाओं का विलासितापूर्ण, दंभी जीवन भी मैंने देखा और शोषण तथा जुल्म से भरे हुए विदेशी शासन को भी निकट से भोगा। मैंने पराधीन भारत की तड़प और स्वाधीनता के लिए उसकी ऐतिहासिक ललक भी देखी तथा स्वाधीनता बाद के कभी न भूलने वाले दृश्य भी मेरी आंखों के सामने आए। मैंने गांधी को भी देखा और जवाहर लाल नेहरू को भी। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को भी देखा और सरदार पटेल को भी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन भी किए और एक झलक योगी अरविन्द की भी ली। प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से भी मेरा परिचय था और बाबू पुरषोत्तमदास टंडन से भी।

कई प्रमुख राजनीतिक व्यक्तियों से मेरी व्यक्तिगत पहचान रही है। लेकिन गांधीजी के बाद में सर्वाधिक प्रभावित हुआ हूं पंडित जवाहर लाल नेहरू से। चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी तथा पैंट-कोट में तो लोगों ने उन्हें देखा ही होगा, मैंने उन्हें धोती कुर्ता में भी देखा। फर्राटेदार अंग्रेजी में बोलते और अंग्रेजी का समर्थन करते हुए भारत की कोटि-कोटि जनता ने उन्हें देखा ही है लेकिन मैंने उन्हें तुलसीकृत रामचरित मानस और गीता बांचते भी पाया है। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंने नेहरूजी को अवसादग्रस्त देखा हो। वह तो शेरवानी पर टंके गुलाब के फूल की तरह ही सदा प्रसन्न मन और खिले हुए ही मिलते थे। लेकिन गांधीजी के शव के पास मैंने उन्हें आंसू गिराते और आह भरते भी पाया है।

नेहरूजी को मैंने दूर से भी देखा है और निकट से भी। कुहनियों के बल हथेलियों पर मुंह साधे उन्हें चुपचाप बैठे भी देखा है और हजारों-लाखों की भीड़ में उन्हें घंटों बोलते भी पाया है। लम्बे-लम्बे डग भरते तो उन्हें प्रायः सभी ने देखा होगा लेकिन मैंने उन्हें दौड़ लगाते और घोड़े पर सवारी करते भी देखा है। उनकी मुस्कान से अनेक लोग परिचित होंगे लेकिन मुझे वह ठहाका लगाते हुए भी सुलभ हुए हैं। मुझे उनका प्यार भी प्राप्त हुआ है और गुस्सा भी। प्यार वह मेरी कविताओं पर करते थे और गुस्सा उन्हें इस बात पर आता था कि मैं हिन्दी के लिए सनकी क्यों हूं ? मैंने उन्हें बेहद अनुशासनप्रिय तो पाया है लेकिन अनअनुशासित भीड़ में घुसकर धक्कम धक्का करते हुए भी देखा है। लोगों ने उन्हें हाथ में छोटी सी रोल लिए तो देखा ही होगा, लेकिन मैंने उन्हें हाथ में नंगी तलवार लिए झपटते भी देखा है।

घटना सन् 46 की है, जब दिल्ली मे साम्प्रदायिक उपद्रव भी हो रहे थे। वह उपद्रव ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करके कनाट प्लेस से गुजर रहे थे कि उन्हें एक दूकान पर असाधारण हलचल दिखाई दी। दूकान के दरवाजे पर सशस्त्र लोग तैनात थे और उसका सामान वहां से फेंका जा रहा था। नेहरूजी ने गाड़ी रुकवाई और तेजी से दूकान की ओर दौड़े। उनका चेहरा तमतमा गया था। गुस्सा काबू से बाहर हो गया था। उन्होंने आव देखा न ताव, एक लुटेरे के हाथ से खंजर खींच लिया। नंगी तलवार हाथ में लिए वह लुटेरों की भीड़ में ललकारते हुए घुस गए। उनके अंग-रक्षक और सचिव जब तक संभलें और सहायता के लिए दौड़े, तब तक तो वह दूकान में दाखिल हो चुके थे। उनके रौद्र रूप को देखकर हथियारबंद लोग सकपका गए थे और परिस्थिति की गंभीरता को देखते हुए वहां से पलक झपकते भाग खड़े हुए।

हिन्दुस्तान टाइम्स का दफ्तर इस दूकान से कुछ ही दूर था। मैं पान खाने की खातिर उधर से निकला था। जैसे शेर अपनी मांद से कूदता है, वैसे ही शेर नर नेहरूजी मोटर से निकले थे। जैसे केहरी को दहाड़ते देखकर जंगल के जीव उसके रास्ते से गायब हो जाते हैं, वैसे ही लुटेरे और तमाशाई सिर पर पैर रख कर भाग लिए। जब मैंने उन्हें तलवार हाथ में लिए हुए देखा तो मुझे लगा कि यह जवाहरलाल नहीं, अमर सिंह राठौर है। नेहरू नहीं, हरी सिंह नलवा है। उनका तना हुआ वक्ष, क्रोध से फड़फड़ाते हुए ओठ, लाल-लाल आंखें और हाथ में नंगी तलवार लिए उन्हें देखकर मुझे महाभारत के उस दृश्य की याद आ गई जब सत्यवादी और धीरमना युधिष्ठिर भी भीम, अर्जुन, और पांडव सेना को विषम परिस्थिति में पाकर अकेले तलवार लेकर दौड़ पड़े थे।

नेहरूजी गुस्से वाले आदमी नहीं थे। लेकिन जब उन्हें गुस्सा आता था तो जरा जोर से ही आता था। अगस्त आंदोलन के बाद वह जेल से छूटे थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में एक जलसा था। वहां टहलते-टहलते पहुंच गए। लौटे तब भी पैदल का ही रास्ता लिया। वह संध्या के झुरमुट में अकेले ही चल रहे थे। उनके आगे-आगे दो युवक सभा में उपस्थित एक महिला के सम्बन्ध में अभद्र बातें करते जा रहे थे। उनकी बकवास रुकती ही नहीं थी। नेहरू जी को क्रोध आगया और बेकाबू भी हो गया। उन्होंने लपक कर एक युवक की गरदन पीछे से पकड़ ली। बड़े जोर से कमर में एक लात जमाई। चिल्लाकर दो-

घुड़सवारी का आनन्द लेते हुए

क्रिकेट मंच में बारी आने की प्रतीक्षा

चार बुरे शब्द भी कहे। युवक फड़फड़ाया लेकिन गरदन नहीं छुड़ा सका। तब उन्होंने धकेलकर उसे दूर फेंक दिया। युवक का साथी तो नेहरूजी को देखकर पहले ही भाग खड़ा हुआ था। धकियाए हुए युवक ने मुड़कर जुबान के साथ-साथ हाथ चलाने की भी कोशिश करनी चाही तो बिना समय गंवाए नेहरूजी ने उस पर लगातार मुष्टिप्रहार शुरू कर दिया और जब तक लोग बीच-बचाव करें तब तक वह उस युवक को सड़क के किनारे वाले नाले में फेंक चुके थे। उन्हें अभद्रता और अश्लीलता कतई बर्दाश्त नहीं थी। वह इसके प्रतिकार के लिए किसी हद तक भी जा सकते थे।

उनका एक घूंसा खाने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। उस घूंसे में क्रोध से अधिक प्यार की ही चोट थी और वह भी गलत बात न सुनने की मजबूरी से ही मुझ तक पहुंचा था। बात तब की है जब राजर्षि टंडन को संसद से विदाई दी गई। संसद के केन्द्रीय कक्ष में इसके लिए ऐतिहासिक आयोजन किया गया। मुझे भी इस आयोजन का निमंत्रण प्राप्त हुआ था। टंडन जी को संविधान का निर्माता होने के कारण उस की एक प्रति, क्रिकेट के खिलाड़ी होने के कारण एक सुंदर बल्ला भेंट करते हुए जब नेहरूजी अपने पुरुषोत्तम से गले मिले तो उनकी आंखे छलछला आई थीं। अलगू राय शास्त्री इस विदाई-समारोह के आयोजक थे। टंडन-नेहरू मिलन के मार्मिक दृश्य को उन्होंने राम-लक्ष्मण के मिलन की उपमा दी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम—टंडन जी और स्वतन्त्रता के रणबाँकुरे, तेजस्वी

लक्ष्मण—नेहरूजी। उपमा सटीक थी। इस पर सभा-भवन तालियों से गूंज उठा। सभा की समाप्ति पर हम लोग केन्द्रीय-कक्ष से बाहर निकले। हमारे आगे-आगे नेहरूजी चल रहे थे और पीछे पीछे मैं, नवीन जी और अलगू राय शास्त्री थे। मुझे विनोद सूझा। मैंने अलगू राय जी से कहा—राम-लक्ष्मण की उपमा तो आपकी सटीक रही, लेकिन यह बताइए दशरथ कौन हैं? प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर फिर पूछा—रूपक का पूरा होना जरूरी है, बताइए हनुमान कौन हैं! उत्तर मिला— इसके लिए बहुत से उमीदवार हैं। इस प्रकार पूछते-पूछते जब मैंने बिभीषण के बारे में पूछा तो नवीन जी बीच में ही बोल उठे— 'वह तो 'सरऊ साले तुम ही हो। लेकिन जैसे ही मैंने शूर्पणखा के सम्बन्ध में जिज्ञासा की तो नेहरूजी मुड़े और नवीनजी को फटकारते हुए कहा—बालकृष्ण यह क्या बदतमीजी है? नवीनजी ने अपनी बला मेरे सिर पर टालते हुए बताया—जवाहर भाई मैं नहीं, यह गड़बड़ गोपाल प्रसाद कर रहा है। नेहरूजी मेरी तरफ बढ़े, एक क्षण के लिए बनावटी गुस्से का प्रदर्शन भी किया और हल्के से मेरी बांह पर एक मुक्का जड़ दिया। फिर मुस्कराए और आगे बढ़ गए। यानी मजाक में भी वह अभद्र लगने वाली बातों को बर्दाश्त नहीं करते थे।

गुस्से का असली रूप तो उस दिन देखा जब मैं हिन्दी का एक शिष्ट मडल लेकर संसद में उनके कक्ष में मिलने गया था। बात तब की है, जब नेहरूजी के आश्वासन पर संसद में भाषा विधेयक लाया जा रहा था। लाल बहादुर शास्त्री उस समय गृहमंत्री थे। मुझसे बहुत स्नेह करते थे। लेकिन उस समय हम दो अलग-अलग मोर्चों पर थे। वह संशोधन विधेयक पेश करने वाले थे और मैं पूरी ताकत से उसका विरोध करने में जुटा था। उस समय सभी हिन्दी प्रेमी एक हो गए थे और चारों तरफ उस विधेयक के विरोध में सभाएं, जुलूस और नारे लग रहे थे। मैंने दिल्ली में हड़ताल भी करा दी थी। अंग्रेजी का एक लम्बा-चौड़ा पुतला भी जलवा दिया था। शास्त्रीजी कहते-यह क्या कर रहे हो? मैं कहता आप क्या रहे हो?

एक रात शास्त्रीजी का फोन आया—भाई, तुम जवाहरलाल जी से बात क्यों नहीं करते? मैंने कहा—वह सुनते कहां हैं? शास्त्रीजी ने व्यवस्था की और मैं सर्वश्री सेठ गोविन्द दास, मौलिचन्द शर्मा, दिनकर, नगेन्द्र, प्रकाशवीर शास्त्री और कंवरलाल गुप्ता के साथ उनसे मिलने पहुंचा। वह उस समय संसद में थे। आधे घंटे की प्रतीक्षा के बाद वे वहां आए। खड़े-खड़े ही बोले—कहिए?

शिष्टमंडल में काफी लोग उनके परिचित थे। लेकिन अपने स्वभाव के विपरीत न मुस्कराये, न हाथ मिलाया और न किसी से बैठने को ही कहा। सेठजी ने जब कहा कि हम हिन्दी के सम्बन्ध में मिलने आए हैं तो उनका पारा गर्म हो गया। खड़े-खड़े ही बोले —हिन्दी! हिन्दी! आय ऐम फेड अप! जैसे देश में हिन्दी के अलावा करने को कोई काम ही नहीं है।

चिरपरिचित गुस्सा उनके चेहरे पर तमतमा आया था। हिन्दी के उद्भट नेता और विद्वान वहां बैठे थे। किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। पंडितजी आवेश में कह रहे थे—हिन्दी के लिए कुछ करना-धरना तो है नहीं, सिर्फ चिल्लाना है। जल्दी से बताइए। संसद की बैठक चल रही है। मैं पांच मिनट के लिए आया हूं।

बात उखड़ती देखकर मैंने कहा—आप शांत होकर बैठें तो कुछ कहा जाए। इतने बड़े मसले पर खड़े-खड़े बातें कैसे हो सकती हैं? पंडितजी को भी ध्यान हो आया। वह किंचित शांत भी लगे। अपनी कुर्सी पर बैठ गए। मौलिचन्द्रजी ने अपने पुराने दरबारी तरीके से बात प्रारम्भ करते हुए कहा—पंडित जी आप तो हमारे नेता हैं। संविधान द्वारा स्वीकृत राजभाषा के अनुच्छेद में संशोधन पर आप पुनर्विचार करें। यही प्रार्थना लेकर हम सब आए हैं नेहरूजी ने बा-अदब पेश किए हुए इन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया और गुस्से को बरकरार रखते हुए बोले—बस, या कुछ और?

उन्हें उठने की मुद्रा में देखकर प्रकाशवीर शास्त्री ने कहा—हम इस विषय पर आपकी जानकारी के लिए कुछ लिखकर लाए हैं।

पंडितजी ने किंचित जोर देकर कहा—क्या लिखकर लाए हैं?

तब डॉ० विजयेन्द्र स्नातक दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। स्मरण-पत्र उन्हें ही देना था। वह उसे पढ़कर सुनाने को उद्यत हुए तो नेहरूजी ने कहा—मुझे दे दीजिए। इतनी सी बात के लिए यहां आने की क्या जरूरत थी?

मुझे बोलना पड़ा—बात तो बहुत बड़ी है। कहना भी बहुत है—

नेहरूजी ने बात काटते हुए कहा—तो फिर कहते क्यों? नहीं?

मुझे नेहरूजी के गुस्से के चढ़ने और उतरने का पता था। जानता था कि उनका गुस्सा, गुस्से से ही उतरता है। जब कोई उन्हें बता दे कि आप गुस्सा हो रहे हैं और ठीक नहीं हैं, तो वह शीघ्र ही सहज हो जाया करते थे। इसलिए मैंने उनसे बजाय मिमियाने के कुछ बल देकर कहा—पंडितजी, हम आपके गुस्से को सहने के आदी हैं। जानते हैं कि वह क्षणिक होता है। इसलिए आप गुस्से को दूर फेंककर कुछ सुनना चाहें, तो कहूं।

पंडितजी ने मुझे घूर कर देखा और आंखों-आंखों में ही जैसे जताया ठीक है, तुम अपनी बात कर सकते हो।

तब मैंने कहा—पंडितजी हम आपके नाम और काम पर दीवाने रहे हैं। करोड़ों भारतवासियों को आप पर गर्व है। आप स्वतंत्रता संग्राम के सेनापति अथवा भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ही नहीं हैं, भारत की जनता आपको हृदय

से प्यार करती है। मैं नहीं चाहता कि यह प्यार नफरत में बदल जाए। लोग यह न कहें कि अंग्रेजों को हराने वाला जवाहरलाल अंग्रेजी से हार गया और जनम-जनम के लिए अंग्रेजी को हमारी छाती पर बिठा गया।

मैंने समझा था कि इस काव्यात्मक व्याख्यान से नेहरूजी कुछ नरम पड़ेंगे। किन्तु उल्टे बिगड़ पड़े। आप क्या समझते हैं, मैं हिन्दी का दुश्मन हूं? या अंग्रेजी का हिमायती हूं? देश को चलाना है तो सब को साथ लेकर चलना होगा। हिन्दी जब तक सबको साथ लेकर नहीं चलेगी, तब तक नहीं बढ़ेगी।

और वह उठ खड़े हुए। स्मरण-पत्र मांग कर लिया। बताया कि कल उस विधेयक पर चर्चा होनी है। देखता हूं क्या हो सकता है? चिरपरिचित मुस्कान उनके चेहरे पर लौट आई। सेठजी के साथ विनोद के एक-दो फिकरे भी कहे। हम लोग लौट चले।

लौटने वालों में सबसे पीछे मैं था। कमरे से सब बाहर निकल गए थे। नेहरूजी ने पीछे से मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया—लाल बहादुर ने आपके बारे में बताया था। हिन्दी के सम्बन्ध में कोई व्यावहारिक योजना बनाइए। मेरे पास भेजिए। हिन्दी के सम्बन्ध में बात कम और काम ज्यादा होना चाहिए।

मैंने शास्त्रीजी के साथ मिलकर योजना बनाई। उसे लेकर शास्त्रीजी ही पंडितजी के पास गए। उस योजना के अनुसार हिन्दी सलाहकार समिति को प्रभावी बनाया गया। उसके सुपुर्द चार काम किए गए कि वह प्रशासन, शब्दावली और अनुवाद, हिन्दीतर क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार और हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी की स्थिति का जायजा लेने के लिए दौरे किए जाएं। लोगों से मिलें और अपनी रिपोर्ट गृहमन्त्री को दें। मुझ पर हिन्दी राज्यों का दायित्व डाला गया। मैं सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मी नारायण सुधांशु, पं० श्री नारायण चतुर्वेदी, राजस्थान के श्री जुगल किशोर चतुर्वेदी सहित हिन्दी के सात राज्यों में गया। वहां के मुख्यमंत्रियों, न्यायाधीशों, शिक्षा-शास्त्रियों, विधानसभा सदस्यों और राज्य सचिवालयों के सचिवों से यह समिति मिली, सरकारी कार्यालयों का निरीक्षण किया, फाइलों में कितना काम हिन्दी में होता है, यह जाकर मौके पर देखा और लौटकर समिति के संयोजक के नाते एक लम्बा प्रति-वेदन शास्त्रीजी को दिया। उसमें कहा गया था कि केन्द्रीय सरकार को हिन्दी भाषी राज्यों से हिन्दी में पत्र-व्यवहार करना चाहिए और इन राज्यों के मंत्रियों और अधिकारियों द्वारा हिन्दी में भेजे गए पत्रों की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। हिन्दी-राज्य हिन्दी में कार्य करें, इस पर प्रकट या अप्रकट रूप से कोई पाबंदी नहीं लगानी चाहिए। हिन्दी-प्रचार के लिए हिन्दी राज्यों को अतिरिक्त धन देना चाहिए। केन्द्रीय सरकार को इन राज्यों में कार्य करने वाले अधिकारी ही भेजने चाहिए। हिन्दी-राज्यों में जो केन्द्रीय सरकार के कार्यालय हैं, उनमें भी हिन्दी में ही कार्य होना चाहिए। इसी प्रकार की कई अन्य व्यावहारिक बातों का समावेश भी इस प्रतिवेदन में था। उनमें से कुछ पर तो अमल हो रहा है, कुछ पर अभी तक नहीं हुआ है। लेकिन नेहरूजी से मिलने और हिन्दी शिष्टमंडल के स्मरण-पत्र से इतना अवश्य हुआ कि विधेयक में कुछ महत्वपूर्ण शब्द जोड़े और निकाले गए तथा विधेयक के साथ-साथ एक संकल्प भी पारित किया गया। यह शास्त्रीजी के प्रयत्न से नेहरूजी के कारण ही हुआ।

नेहरूजी के समय में ही मैंने उनकी भाषा-नीति की खुलकर आलोचना की है लेकिन इसके कारण वह मुझसे कभी व्यक्तिगत रूप से अप्रसन्न नहीं हुए। मैंने जब-जब उन्हें अपने किसी आयोजन में आमंत्रित किया, वह आए और दस मिनट का समय देकर घंटा-डेढ़ घंटा तक बैठे भी। जब मैंने उनसे किसी कार्य के लिए आशीर्वाद मांगा तो वह तत्काल ही मिला। लाल किले के कवि-सम्मेलन का उद्घाटन करने और पन्द्रह अगस्त के मुक्तिपर्व के आयोजन में समय न रहते हुए भी वह शामिल हुए और समय की चिन्ता किए बिना, हिन्दी कविता और हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में देर तक बैठकर आनन्द लेते रहे। एक बार महादेवी वर्मा के सम्मान में एक आयोजन रखा गया। मंच पर वह मेरी बगल में ही बैठे थे। पूछने लगे कि क्या बोलूं? उन्हें जल्दी जाना था। वह बीच में ही उठकर माइक पर गये और कहने लगे—"महादेवी के बारे में क्या कहूं? वह हैं और जोरों पर हैं।" इतना कहकर छलांग मार कर वह मंच से उतरे और यह जा और वह जा। सभा तालियों और कहकहों से गूंजती रही। एक ही वाक्य में नेहरूजी सब कुछ कह गए थे।

एक बार मैं उन्हें अपना साहित्य भेंट करने गया। वह संसद में थे। उनके कमरे में मेरे अतिरिक्त श्री राजबहादुर और उनके मुंह लगे श्री महावीर त्यागी बैठे थे। नेहरूजी संसद की कार्यवाही के बीच में आए। मैंने अपनी पुस्तकें भेंट कीं। श्री राजबहादुर जी ने मेरा परिचय कराया कि यह हजरत अक्सर पत्नी पर लिखा करते हैं। नेहरूजी ने मेरी एक कविता-पुस्तक बीच में से खोली। उस पर मेरी 'सुकुमार गधे' वाली कविता सकार्टून छपी थी। उन्होंने हंसते हुए राज बहादुर जी से कहा—पत्नी कहां, इसमें तो गधा है। मैंने भी तत्काल कह दिया—पंडितजी शादी के बाद आदमी यही हो जाता है। पंडितजी सुनकर खिलाखिला कर हंस पड़े।

अब त्यागी जी की बारी थी। उन्होंने बताया—पंडित जी यह मूर्ख महासम्मेलन के भी प्रधानमंत्री हैं। एकबार इन्होंने मुझे भी बुलाया था।

इस पर नेहरूजी ने मुस्कराते हुए कहा—तुमको ठीक पहचाना। तुम इसी कार्य के योग्य हो।

त्यागीजी ने सफाई दी—परन्तु मैं नहीं गया। नेहरूजी के क्यों, पूछने पर त्यागीजी ने चुटकी ली—मैं आपसे पूछे बिना कैसे जा सकता था।

नेहरूजी ने नहले पे दहला जमाया—क्या सभी मूर्खतापूर्ण कार्य तुम मुझसे पूछ कर ही किया करते हो ?

नेहरूजी विनोद-वृत्ति के व्यक्ति थे। खासकर अपने मित्रों के साथ वह बड़ी बेतकल्लुफी से पेश आते थे। कभी-कभी मूड में आते तो सार्वजनिक सभाओं में भी कोई शेर, कोई लतीफा या ऐसी मनोरंजक घटना सुना डालते थे कि जनता हंसी से लोटपोट हो जाया करती थी। सेठ गोविन्द दास की हीरक जयन्ती पर भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि गोविन्द दास जी तो ऐशो आराम में पले हुए राजकुमार थे। जब पहली बार जेल गए और इन्हें नहाने के लिए बाल्टी-लोटा दिया गया तो लोटे से नहाना ही इन्हें नहीं आया। बार-बार लोटे से सिर को टकरा लिया करते थे।

नेहरूजी के मेरे पास कई पत्र हैं। उनमें से अधिकतर काम-काजी हैं। लेकिन कुछ पत्र बड़े मार्के के हैं। इनमें से एक का जिक्र करूंगा। यह पत्र उस समय का है जब श्री राज बहादुर केन्द्रीय मंत्री होने के साथ-साथ ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष भी थे। तब मैं मंडल का कार्यवाहक अध्यक्ष था। राज बहादुर जी चाहते थे कि मंडल की सम्पत्ति का न्यास बना दिया जाए। इसे लेकर कार्यकर्ताओं में मतभेद हो गया। अखबारों में चर्चाएं चलने लगी। उनकी शिकायतें नेहरूजी तक पहुंचाई जाने लगीं। तब नेहरूजी ने मुझे एक पत्र लिखा। यह पत्र साहित्य और राजनीति तथा सार्वजनिक संस्थाओं से मंत्रियों के सम्बद्ध रहने के बारे में नेहरूजी के विचारों को व्यक्त करता है। नेहरूजी ने मुझे लिखा था कि साहित्य का कार्य साहित्यकारों को ही करना चाहिए। इससे राजनीतिज्ञों को अलग रहना चाहिए। आप राजबहादुर जी को मंडल से मुक्त कर दें। मैं नहीं चाहता कि पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में मंत्रीगण ऐसी रुचि लें कि जिससे संस्थाओं में विवाद उत्पन्न हो जाए और काम में बाधा पड़े।

ऐसा ही मत जवाहरलाल जी का पत्र-पत्रिकाओं के संबंध में भी था। वह इस मत के थे कि सरकार को पत्रों की रीति-नीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न संपादकों पर किसी प्रकार का व्यक्तिगत दबाव डालना चाहिए। एकबार जब 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संपादक श्री मुलगाँवकर ने सरकार का प्रबल विरोध करना शुरू किया तो इंदिराजी ने बाबू घनश्याम-दास बिड़ला का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। लेकिन जब जवाहर लाल जी को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया और इसकी सूचना बिड़लाजी और मुलगांवकर तक भी पहुंचा दी।

वास्तव में नेहरूजी सच्चे अर्थों में प्रजातंत्रीय थे। शासन में रहते हुए भी वह जनता के साथ जुड़े थे। राजनीतिज्ञ होते हुए भी बुद्धिजीवियों के साथ अपने सम्बन्ध बनाए रहते थे। जब उनका निधन हुआ तो अचानक एक कविता उमड़ आई—

धरती रोई, अम्बर कांपा
सागर में उठा उबाल रे !
हो रही विकल भारत माता
चल बसा जवाहरलाल रे !!

—बी-52, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली

(पृष्ठ 6 का शेष)

की संख्या भी असंख्य है तथा इन्हें लोग बड़ी तन्मयता व रुचि के साथ पढ़ते हैं। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित बाल कार्यक्रम भी पर्याप्त लोकप्रिय है।

वर्तमान बाल साहित्य बाल मनोविज्ञान के अनुरूप लिखा जा रहा है। वर्तमान परिवेश से जिसमें कि बच्चा जी रहा है, अवगत कराना युगीन आवश्यकता है। केवल कल्पना लोक में ले जाना और यथार्थ के नाम पर अनावश्यक बातों को शामिल कर उसे बच्चों के लिये निष्प्रयोजन बनाना उचित नहीं है। हमारी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को आधुनिकता के नाम पर नकारना किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। बाल रचनाओं के सृजेता साहित्यकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह बच्चों की रुचि, आवश्यकता व विकास के लिये ऐसे साहित्य की रचना करे जो न केवल मनोरंजक, कौतूहलपूर्ण व ज्ञानवर्द्धक हो बल्कि उसमें नैतिक गुणों का विकास करने की क्षमता हो और सुरुचि-पूर्ण भी हो। लेखक को लिखते समय यह भी याद रखना चाहिए कि वह उन नौनिहालों के लिए लिख रहा है जो कल के भावी नागरिग होंगे। जो कुछ भी वह लिख रहा है उसका बच्चों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान होगा। अत: उसे पूरे उत्तर-दायित्व के साथ ऐसे कुछ नहीं लिखना चाहिए जो बच्चों में कुप्रवृत्तियों का सृजन करे या उसके कोमल मस्तिष्क पर कोई अनावश्यक बोझ डाले।

विश्व साहित्य में बाल साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल साहित्यकारों के कृतित्व को संसार भर में आदर व सम्मान दिया जाता है। बाल साहित्य बच्चों के लिए भले ही लिखा जाता हो पर उसने विश्व में अपनी अप्रतिम छाप छोड़ी है, यही कारण है कि श्रेष्ठ बाल साहित्य आज केवल बच्चों के लिए ही नहीं अपितु बड़ों के लिए भी अत्यधिक रोचक व महत्वपूर्ण है। हिन्दी में बाल साहित्य को अभी काफी लम्बी यात्रा करनी है। यह यात्रा अपनी अलग पहचान बनाये बिना सार्थक सिद्ध नहीं हो सकती। इस दिशा में कदम आगे बढ़ चुके हैं, निश्चय ही सफलता चरण चूमेगी, ऐसी आशा की जाती है। □

—60, अनुपम नगर, नौलखा परेड
ग्वालियर-474011

काशी नागरीप्रचारिणी सभा और हिन्दी

★ डा० रत्नाकर पाण्डेय

भारतेन्दु युग के अनन्तर हिन्दी साहित्य की उल्लेख्य प्रवृत्तियों का नियमन और संचालन करने में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह संस्था 16 जुलाई, सन् 1893 ई० में स्थापित हुई। हिन्दी-भाषा-साहित्य तथा देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार करने वाली यह हिन्दी की सबसे प्राचीन संस्था है। यह संस्था भारतेन्दु के निधन के पश्चात् और द्विवेदीयुग के प्रारम्भ की समस्त साहित्यिक चेतना की योजक बिन्दु है। आधुनिक हिन्दी के व्यवस्थापक डा० श्याम सुन्दर दास के प्रयत्न, पं० रामनारायण मिश्र और ठा० शिवकुमार सिंह के सहयोग से काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना उस समय हुई थी जब देश में उर्दू के साथ ही अंग्रेजी भाषा और साहित्य का बोलबाला था तथा हिन्दी भाषी हेय दृष्टि से देखे जाते थे। अनेक लोगों ने कचहरियों से उर्दू को हटाने के सभा के प्रयत्नों में विघ्न डालने का प्रयास ही नहीं किया, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ाने का भी कुचक्र रचा। पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा लिखे गये 'कोर्ट करेक्टर एंड प्राइमरी एज्युकेशन' नामक निबंध तथा आठ हजार हिन्दी प्रेमियों के हस्ताक्षरों की सोलह जिल्दों के साथ मार्च सन् 1898 ई० में प्रयाग में सभा का प्रतिनिधि मंडल सर एंटानी मैकडानल से मिला। मालवीय जी के प्रयत्न से चारों ओर नागरी-प्रचार की धूम मच गई। बेढंगी फारसी-लिपि कचहरियों में प्रचलित थी। जनता को उससे त्राण दिलाने में तत्कालीन जन-संस्थाओं और समाचार पत्रों ने नागरी-प्रचारिणी सभा के इस व्यापक आन्दोलन का समर्थन किया। सभा ने इस प्रयत्न में अंग्रेजी में 'शुड नागरी बी इट्रोडयूज इन कोर्ट' नामक पुस्तक छपवाकर हजारों की सख्या में जनता में वितरित कराई। अंततः संयुक्त प्रांतीय सरकार ने तीन वर्षों के निरन्तर प्रयत्न से 18 अप्रैल, सन् 1900 ई० को कचहरियों में नागरी के प्रचलन की आज्ञा दी।

सभा की स्थापना के पूर्व हिन्दी साहित्य का एक भी व्यवस्थित इतिहास ग्रंथ नहीं लिखा गया था। साहित्य और विद्यालयों में उच्च शिक्षा देने के लिए हिन्दी के जैसे ग्रंथों की आवश्यकता थी वैसे या तो बेठनों में बंद थे या उनकी रचना ही नहीं हुई थी। सभा ने सन् 1900 ई० से हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारंभ किया और डा० श्यामसुंदर दास के निरीक्षण में उत्तर प्रदेश सरकार की सहायता से खोज रिपोर्ट के वार्षिक विवरण का प्रकाशन आरंभ हुआ। इन खोज रिपोर्टों द्वारा हिन्दी के विलुप्त साहित्य का अंशतः सांकेतिक रूप हिन्दी जगत के सामने आने लगा और धीरे-धीरे लोग अपने गौरवशील साहित्य के अध्ययन की ओर प्रेरित हुए। इस कार्य में अनेक अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथ सभा को उपलब्ध हुए और अनेक प्राचीन कवियों की रचनाएं सामने आई। इन्हीं खोज रिपोर्टों के आधार पर आगे चलकर मिश्रबंधुओं ने मिश्रबंधु-विनोद के नाम से एक बहुत बड़ा ग्रंथ निकाला, जिसे साहित्यकारों का वृत संग्रह कहा जा सकता है। आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप देकर और सम्यक् काल विभाजन करके हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। अनेक साहित्यकारों का स्वतंत्र अध्ययन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी में शोध-प्रबंधों को प्रस्तुत करने के लिए अनुसंधायकों को जागृत करने का श्रेय भी सभा को है। हस्तलिखित पुस्तकों का खोज-कार्य अनवरत चलता रहा जिसके परिणामस्वरूप आज सभा में पन्द्रह हजार पांडुलिपियां या हस्तलिखित ग्रंथ वर्तमान हैं। द्विवेदी युग में प्रस्तुत इन त्रैवार्षिक खोज रिपोटों के निरीक्षकों में डा० श्यामसुंदर दास, मिश्रबंधु और डा० हीरालाल जैन आदि प्रमुख हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य में नवीन विषयों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह कार्य प्रारंभ किया गया। पत्रिका द्वारा साहित्यकारों में शुद्ध शोधपरक विवेक जागृत हुआ। यह पत्रिका नागरीलिपि और हिन्दी का संरक्षण और प्रसार करती रही है। और आज तक हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों का शोधपूर्ण विवेचन भी करती चली आ रही है। भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान, विज्ञान और कला का पर्यालोचन, प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्रों का विवेचन इस पत्रिका का मूल उद्देश्य है। द्विवेदीयुग के प्रारंभ में प्रकाशित इस पत्रिका के द्वारा हिन्दी साहित्य में गवेषणात्मक समीक्षात्मक निबंध रचना का स्वरूप पहली बार स्थिर हुआ।

सभा ने प्रारंभ से ही हिन्दी के कोश और व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव किया। सन् 1894 ई० में राधाकृष्ण दास ने विशाल शब्दकोश निर्माण की योजना सभा के सामने रखी। शब्दकोश की तैयारी सन् 1908 ई० में प्रारंभ हुई। दो वर्षों के भीतर एशिया की भाषाओं के कोशों में सबसे बड़े वैज्ञानिक कोश 'हिन्दी शब्द सागर' के निर्माण का कार्य पूरा हो गया। डा० श्यामसुंदर दास के संपादन में यह कोश सन् 1929 ई० में छपकर तैयार हुआ। इसके सहायक संपादकों में बालकृष्ण भट्ट, अमीरसिंह, लाला भगवानदीन रामचन्द्र शुक्ल और रामचन्द्र वर्मा थे। यह कोश हिन्दी का सबसे प्राचीन और

प्रामाणिक शब्दकोश माना जाता है। व्याकरण के क्षेत्र में भी सभा ने सर्वांगपूर्ण व्याकरण तैयार कराने का कार्य किया। इस कार्य को पं० कामता प्रसाद गुरु ने अपने हाथ में लिया और श्री गंगाशरण तथा श्री रामकरण के व्याकरणों के आधार पर हिन्दी का पहला व्याकरण संवत् 1976 में छपकर तैयार हुआ। जैसा कि कहा जा चुका है, हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास पहली बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा वैज्ञानिक विधि से हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया जो हिन्दी का एकमात्र व्यवस्थित इतिहास है। नागरी प्रचारिणी सभा ने सूर, तुलसी, कबीर, जायसी आदि की ग्रंथावलियां भी अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों से संपादित कराईं। इसके पूर्व हिन्दी में इन कवियों की रचनाओं का वैज्ञानिक विधि से संपादन नहीं हुआ था। सभा ने 'आर्यभाषा पुस्तकालय' के नाम से सन् 1896 ई० में एक पुस्तकालय की स्थापना की। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रकाशित हिन्दी के प्राचीन ग्रंथ इस पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। यह पुस्तकालय विश्व में हिन्दी का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। आर्यभाषा पुस्तकालय द्वारा हिन्दी में शोधकार्य के लिए अनुपलब्ध सामग्री मिलने लगी और विद्वान् लोग हिन्दी में शोध और अध्ययन की ओर प्रेरित हुए। सभा का इतिहास हिन्दी साहित्य और नागरीलिपि के सर्वांगीण विकास और प्रचार की जीवन-व्यापी साधना का फल है। द्विवेदीयुग के निर्माण में सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सन् 1903 ई० में सभा के अनुमोदन से प्रकाशित होने वाली सरस्वती के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी नियुक्त हुए। द्विवेदीयुग के साहित्यिक निर्माण और विकास में 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण पीठिका है। हिन्दी मासिक पत्रिकाओं के इतिहास में सरस्वती ने नवीन युग और आधुनिक चेतना का प्रवर्तन किया। महान उद्देश्य से प्रेरित होकर विविध विषय-संपन्न सरस्वती हिन्दी की साहित्यिक मासिक पत्रिका थी। सरस्वती का प्रकाशन स्थगित होना 76 वर्षों की हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के स्रोत का विलयन है।

कुछ सैद्धांतिक विवादों को लेकर सभा ने सन् 1903 में दुःख के साथ सरस्वती के प्रकाशन से संबंध तोड़ लिया। हिन्दी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में सरस्वती का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। सरस्वती के प्रथम अंक में संपादन समिति के समस्त सदस्यों ने अपनी रचनाएं छपवाकर उसे साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। सरस्वती द्वारा आधुनिक हिंदी साहित्य का निर्माण हुआ। वर्तमान हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों ने सरस्वती के माध्यम से हिंदी लिखना सीखा। आज भी हिंदी के प्रतिष्ठित लेखक ज्ञानार्जन सरस्वती की पुरानी फाइलों से ही करते हैं। उसकी सेवाएं स्वर्णाक्षरों में चिरस्मरणीय रहेंगी। सरस्वती ने लिखने की प्रेरणा दी और हिन्दी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के इतिहास लेखन की सामग्री सरस्वती के पुराने अंकों में बिखरी हुई है।

सन् 1900 ई० से जन्म लेकर सन् 1902 ई० तक की सरस्वती में स्वतंत्र शैली या विचारधारा का स्वच्छंद प्रवाह नहीं था। भारतेन्दु के बाद किसी कुशल पत्रकार द्वारा भाषा का मार्ग स्थिर नहीं हो रहा था। सन् 1903 ई० में द्विवेदी जी का सरस्वती संपादक होना बीसवीं शताब्दी के साहित्य की ऐतिहासिक घटना है। द्विवेदी जी का आविर्भाव सरस्वती में तब हुआ, जब खड़ी बोली संघर्षकाल से गुजर रही थी। उन्होंने सरस्वती द्वारा हिन्दी को नई शक्ति, नई स्फूर्ति और नई चेतना दी। हिंदी साहित्य के इतिहास में गद्य का स्वरूप निर्धारण सरस्वती द्वारा प्रारंभ हुआ। उन्होंने व्याकरण-संगत भाषा के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया और साहित्यिक अराजकता की स्थिति पर अंकुश लगाया।

द्विवेदी जी ने सरस्वती में केवल भाषा का ही स्वरूप स्थिर नहीं किया अपितु उसकी बाहरी सज्जा में भी परिवर्तन किया। प्रकाशित होने वाली रचनाओं को विषयबद्ध किया। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक चेतना को ध्यान में रखकर विविध प्रकार की सामग्री प्रकाशित करना प्रारंभ किया।

'विविध विषय' के अन्तर्गत द्विवेदी जी द्वारा लिखी गई संपादकीय टिप्पणियों के अतिरिक्त तत्कालीन वैज्ञानिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा अनुसंधानात्मक शोध तथा अन्य परिवर्तनों का विवरण भी विश्व के नवीनतम प्रयोगों से पाठकों को परिचित कराने के लिए दिया जाता था। द्विवेदी जी ने व्यंग चित्रों के प्रकाशन का आरंभ किया और सन् 1903 ई० तक के अंकों में व्यंगचित्र के साथ साहित्य समाचार शीर्षक से उनके द्वारा रचे व्यंग पद्य हैं। द्विवेदी जी ने सरस्वती में प्रकाशित रचनाओं की भाषा परिमार्जित करके हिंदी में शुद्ध खड़ी बोली लिखने की महत्वपूर्ण परंपरा चलाई। उनके संपादन की सबसे बड़ी विशेषता लेखकों का निर्माण था। श्रीधर पाठक, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गौरीदत्त पाण्डेय, जनार्दन झा, डा० महेंटूलाल गर्ग, रामचंद्र शुक्ल मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, सत्यनारायण कविरत्न आदि हिंदी के जाने-माने लेखकों की साहित्य-साधना की जन्मभूमि सरस्वती थी। सरस्वती में पत्रिका की मर्यादा और पाठकों की रुचि के अनुकूल साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होती थी। संपादन कला का स्तर ऊंचा था। आलोच्य पुस्तकों की भाषा की अशुद्धियां दिखाकर लेखकों को सावधान किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि भाषा पर द्विवेदी जी के सुप्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी। हिंदी भाषा के स्वरूप विकास एवं साहित्य निर्माण में सरस्वती का ऐतिहासिक

(शेष पृष्ठ 16 पर)

श्रीलंका में हिंदी : एक विहंगम दृष्टि

★ डा० वीरेन्द्र शर्मा

कोलम्बो से लगभग 6 किलोमीटर की दूरी पर केलानिया विश्वविद्यालय है। वहां आधुनिक भाषाओं के विभाग में हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की भी व्यवस्था है। इस विभाग में हिन्दी के दो व्याख्याता हैं : डा० इन्द्रलता दसनायके तथा श्री विमल धर्म एम० ए०। इन दोनों ही प्राध्यापकों ने हिन्दी भाषा और साहित्य की उच्च शिक्षा भारत के लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राप्त की है। श्री विमल धर्म की विशिष्ट अभिरुचि आधुनिक हिन्दी कविता के गहन अध्ययन और शोधकार्य में है। वे स्वयं भी अत्यंत सहृदय तथा समर्थ कवि हैं तथा विश्वविद्यालय में अध्यापन के अतिरिक्त श्रीलंका रेडियो पर मनोरंजक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

2. डा० इन्द्रलता दसनायके ने सन् 1977 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय से "अमृतलाल नागर के औपन्यासिक पात्र" विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी०एच०डी० की उपाधि अर्जित की, वे हिन्दी की वरिष्ठ प्राध्यापिका हैं। वे आजकल 'हिन्दी-सिंहली भाषा कोश' के प्रणयन तथा मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' के सिंहली भाषा के अनुवाद कार्य में लगी हुई हैं। वे श्रीलंका हिन्दी सम्मेलन की सन् 1979 में स्थापना से लेकर अद्यावधि उसकी सचिव हैं—सन् 1975 में नागपुर में उन्होंने श्रीलंका का प्रतिनिधित्व किया था।

3. श्रीकरुणा हेट्टियाराची श्रीजयवर्धनपुर विश्वविद्यालय, नूगेगोदा में हिन्दी के व्याख्याता हैं।

4. श्री रत्न श्री एरातना श्रीलंका ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन में सिंहली भाषा के माध्यम से रेडियो पर हिन्दी के पाठ श्रोताओं के लिए प्रस्तुत करते हैं।

5. कुछ हिंदी-सेवी बौद्ध भिक्षुओं जैसे प्रो० बम्बारेन्दे श्री सीवली थीरो, विद्यालंकार प्रीवेन, केलानिया तथा पूज्य ध्मातिपोला रत्नसार थीरो, साम विहारय ने हिन्दी के प्रचार प्रसार में सराहनीय कार्य किया है।

इसी प्रकार केलानिया विश्वविद्यालय में सिंहली भाषा विभाग में डा० चन्द्र श्री पल्लिया गुरु भी हिन्दी प्रचार के कार्य में तत्पर हैं।

कोलम्बो स्थित भारतीय उच्चायोग में भी हिन्दी सिखाने के लिए नियमित कक्षाएं लगाई जाती हैं। ये कक्षाएं सप्ताह मे दो दिन अर्थात् सोमवार और बुधवार को होती हैं—भारतीय उच्चायोग की इन हिन्दी कक्षाओं के लिए दो अध्यापक हैं सर्वश्री नायर और प्रभात एलगाडू।

इनके अलावा श्रीलका के कुछ हिन्दी विद्यार्थियों और अध्यापकों को भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली में अध्ययन के लिये भेजा गया था। इनमें से एक हिन्दी अध्येता श्री अमीन (पता है सी-160 हिंगूला) मई 83 में श्रीलंका लौटे हैं। उन्होंने अब तक कृशनचन्दर के दो उपन्यासों के तमिल भाषा में अनुवाद कर दिये हैं। इसी प्रकार भारत की बहुत सी लोक कथायें उन्होंने अनूदित की हैं जो श्रीलंका की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं, उनका कहना है "हिन्दी साहित्य को अपने देश की भाषाओं में प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य है। मैं हिन्दी भाषा का अपने देश मे प्रचार करना चाहता हूं, हिन्दी की सेवा करना अपना कर्तव्य समझता हूं।"

इसी प्रकार एक अन्य हिन्दी प्रेमी श्री निमल पेरेरा, लाफेवरीय, मारावीला भारत में हिन्दी का अध्ययन करके हाल में ही स्वदेश लौटे हैं। वे एक अध्यापक हैं और श्रीलंका में हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए उत्सुक हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—"विश्व जनमत को तृतीय विश्व के अनुकूल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी शिक्षण की सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत और अधिक विदेशी छात्रों को प्रशिक्षित किया जाय। हिन्दी शिक्षण की सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना ही एक ऐसा माध्यम है जिससे विश्व मंच तैयार कर तृतीय विश्व के साथ तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है।"

श्रीलंका के आयुर्वेद विद्यालयों में भी हिन्दी-शिक्षण सुविधाएं हैं। □

भारतीय दूतावास, कोलम्बो, श्रीलंका

सिक्खों की हिंदी सेवा

★ गोवर्धन लाल पुरोहित

खड़ी भाषा व हिन्दी के उद्भव तथा विकास में सभी धर्मावलम्बियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। मुसलमान भाइयों ने जो हिन्दी की सेवा की वह किसी से छिपी नहीं है। सभी वर्गों ने हिन्दी को अपनाया इसका मुख्य कारण हिन्दी भाषा की सरलता व व्यापकता है। जन भाषा होने के कारण सभी धर्माचार्यों ने अपने उपदेशों के प्रचार के लिए हिन्दी को ही प्रधानता दी।

सिक्खों के आदिगुरु नानकदेवजी महाराज ने हिन्दी के प्रचार मे बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया। क्योंकि उनकी यात्रायें भी बड़ी-बड़ी दूर की थी। सिक्ख विद्वानों का कथन है

कि वे जहां भी जाते थे, वहां हिन्दी में ही अपना उपदेश देते थे। उनके कहे हुए अधिकांश शब्द हिन्दी में ही है। हिन्दू जाति की रक्षा व हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार के क्षेत्र में गुरुजी के कार्य को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने हिन्दी भाषा में अनेक पद व कवित्त लिखे :

जागोरे जिन जागना, अब जागिन की बारि।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवे पांव पसारि॥

★

सब कुछ जीवत को ब्योहार।
मात पिता भ्राई सुत बांधव अरु पुनः घर की नार॥
तन से प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार।
आश धरी कोऊ नहिं राखे घर ते देत निकार।
मृग तृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो दे विचार॥
कहु नानक भज राम नाम नित जातें हो उधार।

सिक्खों के पांचवें गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक थे। उन्होंने ही गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया। सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर जी हिन्दी बहुत अच्छी लिख लेते थे। औरंगजेब को उन्होंने संसार की असारता का जो पत्र लिखा वह हिन्दी में ही था।

सिक्ख धर्म में गुरु गोविन्द सिंह जी एक शूर वीर तथा उच्च कोटि के हिन्दी के कवि थे। उनके समय में हिन्दी भाषा का खूब प्रचार हुआ। हिन्दी की कितनी ही पाठशालायें खोली गईं। इतना ही नहीं उन्होंने संत गुलाब सिंह जी को काशी में हिन्दी व संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा। उन्होंने हिन्दी में चार ग्रंथों की रचना की। वेदान्त प्रेमी सिक्ख इन ग्रंथों को बहुत ही प्रेम से पढ़ते हैं। गुलाब सिंह जी के अतिरिक्त भाई संतोष सिंह जी ने भी हिन्दी की अच्छी सेवा की। ये सिक्खों में हिन्दी के महाकवि कहे जाते हैं। इन्होंने "सूर्य प्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना हिन्दी में ही की, जिसे सिक्ख लोग बहुत ही रुचि से पढ़ते हैं।

गुरु गोविन्द सिंह जी हिन्दू धर्म व संस्कृति की ढाल के रूप में जाने जाते हैं। मुगलों से हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने का उन्हें गौरव प्राप्त है। हिन्दी भाषा के तो वे अच्छे कवि थे। उन्होंने जाप, सुनीति, प्रकाश, ज्ञान प्रबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धिसागर विचित्र नाटक नामक ग्रंथों की रचना हिन्दी में ही की। उनकी हिन्दी कविता ब्रजभाषा का पुट लिये हुए हैं। औरंगजेब की साम्राज्य लिप्सा पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं :

का भयो जो सब ही जग जीत सु लोगन बहुत्रास दिखायो।
और कहा जु पै देस विदेसन मांहि भले गज गाहि बंधायो॥
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सरयो नहिं, लोक गये परलोक नसायो।

आधुनिक युग में भी ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा हिन्दी का प्रचार किया गया। इन्होंने हिन्दी में "ग्रंथ प्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना की। आज भी सिक्ख भाई सारे देश में अपनी रोटी रोजी के लिए कार्य कर रहे हैं। जगह-जगह गुरुद्वारे हैं, वहां भी हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार हो रहा है।

अतः अब हिन्दी केवल संवैधानिक दृष्टि से ही राष्ट्रभाषा नहीं हैं। वरन् जनभाषा के रूप में अपनाई जा रही है। सभी वर्ग इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है। □

प्रताप नगर, प्लाट नं० 7, ग्लास फैक्ट्री के पास, टोंक रोड, जयपुर

(पृष्ठ 14 का शेष)

महत्व है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'भारतेंदु युग ने जो आधुनिक साहित्य दिया, द्विवेदी युग ने उसका पालन-पोषण उसी प्रकार किया, जैसे राजनीति में तिलक की उत्पन्न की हुई राजनीति का गांधी ने। "द्विवेदी युग ने भारतेंदु युग की अपेक्षा सामयिक युग की नई चेतना का विकास किया और नवोत्थानवादी राष्ट्रीय चेतना को नई भाषा का परिष्कार दिया गया। द्विवेदी युग में भारतेन्दु युगीन साहित्य का भाषा परिष्कार हुआ तथा गद्य के क्षेत्र में स्थिरता, संगठित शक्ति और नव चेतना का जागरण हुआ। इस महान कार्य को द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से नियोजित और विकसित किया।

नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की भी सन् 1910 ई० में स्थापना की। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा हो या दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास या अन्य प्रान्तों की हिन्दी सेवी संस्थाओं की स्थापना, पल्लवन, विकास और हिन्दी को आगे बढ़ाने के समस्त कार्यकलापों के मूल में नागरी-प्रचारिणी सभा का वही स्थान है जो देव नदी गंगा का है। जैसे भगीरथ गंगा को पितरों को तारने के लिए स्वर्ग से धरती पर लाये उसी तरह डा० श्यामसुन्दर दास ने नागरीप्रचारिणी सभा की इस शताब्दी के शुरू होने के पूर्व हिन्दी रूपी गंगा का प्रचार जन मानस में किया। उसी का परिणाम यह तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन है जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के संकल्प से परिभाषित है।

नागरी प्रचारिणी सभा, 26 डा० राजेन्द्र प्रसाद रोड, नई दिल्ली-1

रिपोर्ताज

आतंक के छत्तीस घंटे

राजी सेठ

सूरत, गुजरात प्रदेश—5 अगस्त 1983.

संध्या घिर आई है। आज कुछ अतिरिक्त अंधेरा है। आकाश की काली छाती को चीर-चीर जाता विद्युत लास्य... कंपा देने वाली गड़गड़ाहट। बहा देने डुबोने वाली मूसलाधार वर्षा—यूं ही नहीं बरस रही है दाएं बाएं थपेड़े मार रही है... टीन की छतें खनखना रही हैं... शोर... भीषण सर्राटे...

वर्षा का आज तीसरा दिन है। एक आक्रामक हिंसा प्रकृति की मुद्रा में है।

रात बहुत गहरी और डरावनी सी है। बाहर भयानक शोर है परन्तु उसमें मानव का कोई योगदान नहीं है...केवल वर्षा दहाड़ रही है...छतें बज रही हैं। झूंऽऽऽ, झूंऽऽऽ के स्वर बन्द दरवाजों और खिड़कियों पर आघात दे रहे हैं...दरीचों को चीर फाड़ कर भीतर प्रविष्ट करना चाहते हैं...

सहम कर सोये हैं सभी। अतिवृष्टि का ऐसा आतंक आज तक नहीं देखा।

अतिरिक्त सावधानी में एक अदद माचिस रख ली है तकिए के नीचे।

□

तीन का घन्टा आज सुनाई नही दिया है। इस समय एक बार तो आदतन उठ जाना होता है। ...जग गई हूं...वृष्टि जारी है... थपेड़े, अन्धड़, हवा का तीखा चीत्कार...

अचानक...सामने के शिव मन्दिर के घंटे पूरे बल से टनकने लगते हैं...टन् टन् टन्...टन्-न्-न्...टन् टन् टन्—जागो, जागो ...तांडव प्रारम्भ हो रहा है।

पूरे बल से दोहत्थड़ मार-मार कर पीछे का दरवाजा पीटने लगता है कोई।

पहली प्रतिक्रिया डर की है। हाथ बिजली के स्विच पर जाता है, परन्तु रोशनी नहीं होती। लाइट पहले ही जा चुकी है...हाथ को हाथ नहीं सूझता...

दरवाजे पर पूरी थाप पड़ रही है... टटोल कर दरवाजा खोलती हूं।

मेरा नौकर मुझे धकिया कर एकदम अन्दर घुस आता है—'पानी...पानी... बच्चे, मेरी कोठरी में इतना पानी भर चुका है... मेरी खाट तैरने लगी तो नींद खुली... बच्चों को पहले ऊपर ले जाता हूं...'

मीठी नींद में बेहोश दोनों बच्चों को एक साथ कंधे पर लगाकर, टटोलते, पैरों में चढ़ते पानी को धकेलते हुए वह ऊपर की मंजिल पर भागता है।

कल रात तक तो वह तेज बुखार में तप रहा था...

जरा ही पहले पैरों तले कुछ गीला सा महसूस हुआ था अब तरल पानी के हल्के हल्के थपेड़े पैरों से टकराने लगे हैं।

इधर उधर, . . .यहां वहां, लालटेन. . . कोई गिरी पड़ी मोमबत्ती ढूंढ़ती हूं. . . कुछ हाथ नहीं आता। रात के तीन बजे, इस भयानक आंधी पानी की रात, इस नितान्त प्रकाश-विहीन बस्ती में, इस अनिमंत्रित पाहुने का आ जाना किसने सोचा था. . .

शहर के गंदे गलीज मोहल्ले को छोड़कर, शहर से बिल्कुल बाहर, जब यह मकान लिया था तो नदी किनारे का इसका स्मरणीय सौन्दर्य देख कर ही. . .। कितनी भली लगी थी दृष्टि-विस्तार के भीतर बहती यह चौड़े पाट की विराट विपुल रसमयी ताप्ती।

. . .कहीं से साइकिल की लाइट का एक लैम्प पा गई हूं. . . सेल इन्टेक्ट है। बटन दबा कर जला दिया है उसे. . .मरा हुआ क्षीण सा प्रकाश. . .

उसमें और कुछ दीखे न दीखे पानी का निरन्तर बढ़ते आना दीखता ही है। चारपाई के नीचे, रसोई में, टेबल के नीचे, जो कुछ. . . जितना कुछ है. . . तैरने लगता है—बर्तन, जूते, मोजे. . . प्लास्टिक के छोटे-छोटे खिलौने. . . अखबारों की छितरती गड्डियां. . . इधर उधर दुबके पड़े कूड़े के छिटपुट टुकड़े. . . पहले तैरते हैं फिर प्रवाह के साथ बाहर चलने को तत्पर से लगते हैं।

संकट. . . मुंह फाड़े निगलने को जीभ लपलपा रहा है।

□ □ □

सामान हटाना होगा. . . पहले क्या ? दुविधा है। क्या सबसे जरूरी है जीवन के लिये ? शायद यह घड़ी इस प्रकार की दार्शनिकता के लिये नहीं है। पहले कागज. . .बैंक के, इन्श्योरेन्स के. . . जरूरी कागज पत्तर. . . कुछ कैश, गहने. . . कीमती कपड़े. . . गरम कपड़े. . . बिस्तर. . . कहां तक. . .? कैसे. . .? आखिर कितनी जल्दी. . .?

कातरता. . . घबराहट. . .। नहीं, नहीं. . . ऐसे तो कुछ भी न हो सकेगा. . .।

एक स्टूल लेकर अलमारी के सामने खड़ी हो जाती हूं। वार्डरोब का नीचे वाला खाना पानी से भर चुका है. . . उसमें रखे कांच के प्याले और तस्तरियां पानी के आघात से आपस में खनखना रही हैं. . . जाने देना होगा. . .

सारा सामान ताबड़तोड़ चारपाई पर फेंकती हूं।

पानी का एक जोर का रेला आता है. . . और स्टूल के पांव उखड़ने लगते हैं. . . मैं धड़ाम से पानी में जा गिरती हूं. . .।

सोचने का समय नहीं है। मैं लपक कर अलमारी के एक तख्ते पर लटक लेती हूं। . . .

मेरे पति का दायां हाथ हड्डी टूट जाने के कारण चार सप्ताह से प्लास्तर में है. . . वह एक हाथ से मात्र जहां तहां रोशनी दिखा पाते हैं।

प्रताप बच्चों को ऊपर पटक कर नीचे आ चुका है. . . बड़ी बड़ी चादरें खोलकर. . . जैसा भी, जो भी, सामान हाथ में आया, भरता जा रहा है. . . और गठरियां बांधकर ऊपर ले जा रहा है।

पानी का दबाव, प्रवाह और ऊंचाई बढ़ रही है···निरन्तर निरन्तर...पहले टखने गीले थे...फिर पिंडलियां ठंडी हो रही थी...और यह प्लावन अब घुटने डुबो चुका है. . .

ऊब है। व्यग्रता है। प्रतीक्षा है. . . समय थोड़ा जल्दी खिसके, दिन निकले. . .मेघ घने आकाश से बहुत नहीं परन्तु थोड़ा तो स्वाभाविक प्रकाश मिले . . .

एक एक करके गठरियां ऊपर भेजी जा रही हैं।

तब तक सोफे और पलंग...कुर्सियां और टेबल...दालों के डब्बे...हिचकोले खाकर दीवारों से टकरा रहे हैं . . .

रात को खाना खा कर जूठे बर्तन जमीन पर रख दिए थे... वह धीरे-धीरे उठने. . .तैरने और चलने लगते हैं।. . .किधर-किधर हाथ बढ़ाएं। इन दो हाथों में...कितना कुछ भरा जा सकता है...पैरों की गति अटक-अटक जाती है...एक तो पानी में प्रवाह है तिस पर गीले कपड़ों द्वारा छिन गई पैरों की फुर्ति. . .

बरसात की तेजी में कोई कमी नहीं है। पानी तेजी से बढ़ रहा है...बढ़ता ही जा रहा है. . .किताबों से भरी यह लकड़ी की पेटियां...किताबें, तिस पर पानी का बोझ...जरा सी खिसक तक नहीं पा रही हैं...शरत्...वीरेन्द्र, शेक्सपियर...नहीं, नहीं। जीवन संघर्ष क्या इनकी अपेक्षा ज्यादा विकट नहीं है ? मुंह फेर लेती हूं।

पानी कमर तक। अनाज, चावल, मसाले मिट्टी का तेल... सब का सब...पानी की चपेट में आता जा रहा है ...पानी की सतह पर इधर उधर एक दो प्याज, एक गड्डी लहसुन. . .और एक औंधा घड़ा. . .तैर रहा है। . . . रसोई की ओर से आंख बन्द कर ली हैं।

फलस में नीचे से पानी गुड़गुड़ा रहा है. . . जो कुछ मैला है मलिन है, उच्छिष्ट है भीतर से तैर-तैर कर ऊपर आ रहा है...।

जिन दरवाजों से सामान उठाउठा कर बाहर ले जाया जा रहा था. . .उन्हीं दरवाजों से सामान अपने आप बाहर की ओर बहने लग गया है।

आवश्यक हो गया है. . . रोक देना। . . . थम जाना. . .। . . .जो जा रहा है उसे या तो बन्द कर देना या जाने देना. . . गम खाना।

कमर तक आते पानी की तेजी. . . यह मात्र अनुभव की चीज है. . . सुरक्षा की गारंटी कौन दे सकता है ?

ज्यों का त्यों छोड़ दिया है सब. . . हताशा नहीं है. . .सोच नहीं है. . . केवल एक तेज रफ्तार से घिरते संकट की जागृत चेतना . . .

दीवारें आधी पानी में. . .पर्दे आधे पानी में डूब चुके हैं. . . पंखों और लाइट्स के स्विच बोर्ड से छः इंच नीचे होगा पानी...

आगे की ढेर सारी असुविधाएं इस समय सोचने का जी नहीं चाहता...

ताला लगा दिया है... पर बन्द हो जाने पर भी दरवाजे के आर-पार पानी को जाने की रुकावट कहां है ?

पहली बार, बाहर कम्पाउंड में देखा है। एक भरी पूरी नदी में द्वीप सा अपना घर है।

किसी तरह...धाराओं और थपेड़ों से लड़ते ऊपर आ गए हैं...इस नई सी बस्ती में वही एक दुमंजिला घर है...।

आसपास के अधिकतर लोग वहां आ चुके हैं...अच्छी खासी भीड़ है...। कांपते हुए बच्चे हैं...ठिठुरते हुए गहरी आंखों वाले वृद्ध हैं...उत्तेजना से दीप्त युवक...कुछ विचार मग्न अधेड़। ...स्त्रियां एक समूह में एक ओर सिमट कर बैठ गई हैं...।

गीले, बोझिल, टपटप, निचुड़ते हुए कपड़े...हवा के सर्राटों से कांप-कांप उठती हड्डियां...कवि ने गीले सौन्दर्य में नारी चित्र की कल्पना में कैसे सुख पाया था ?

ऊपर आकर एकाएक अपने से बाहर निकल आए हैं... निवृत्त से हो गये हैं...सब नीचे छूट गया है... सब काम ... सारी चिन्ताएं...सारी उत्तेजना...। देखना रह गया है बस...देखना...बाहर देखना... प्रतीक्षा करना।

बाहर...दूर दूर तक...जहां तक दृष्टि जाती है...पानी ही पानी है—अथाह अनन्त पानी। कोई 6 मील दूर समुद्र है यहां से।...उधर ले जाने वाली सड़क का कोई नाम निशान नहीं दीखता... सब एकमेव हो गया है... एक रस... एक सार— रास्ते पगडंडियां... झाड़ियां पौधे... बाहर का चाय का स्टोल... पान का गल्ला... सब पहिचानें मिट गई हैं।

बाहर तबेले में बालू भाई का घोड़ा बाँय बाँय चीख रहा है... बालूभाई कुर्सी पर, निस्पृह भाव से चुपचाप बैठे हैं... यह प्रकृतिस्थता क्या उन्हें उनके वृद्धत्व ने दी है ?

सामने वाले इच्छानाथ मंदिर का पुजारी हाथ हिला-हिला कर पुकार रहा है... उसका हठ था कि प्रभु-प्रतिमा को अकेला छोड़ कर वह कहीं नहीं जाएगा...उद्धार करने वाले द्रोपदी के भगवान स्वयं उद्धार करेंगे... पर साक्षात् शिव पानी में पैठ चुके हैं... पुजारी के बच्चों का रुदन तेज वर्षा में सुनाई नहीं देता... केवल उनके फाड़े हुए मुख और बरसाती आंखें देख पा रहे हैं सामने बालकनी पर खड़े हम।

दो तीन युवक पानी में कूद पड़े हैं... मकान के कम्पाउंड और मन्दिर के कम्पाउंड के बीच लोहे की कंटीली तारों की एक फेंस हैं...एक बाँस के सहारे लपक कर चढ़ गया है एक नवयुवक... भारी भरकम पुजारी पत्नी को कंधों पर उठा लाया है और फेंस के उस पार खड़े नवयुवक के कंधों पर स्थानान्तरित कर दिया है... इसी तरह बच्चे और वह पुजारी स्वयं।

पानी एक-एक इंच लगातार बढ़ रहा है... अभी तक गेट ही डूबा था...अब हैण्डपम्प की चक्की तक पानी में लुप्त होती जा रही है...साथ ही आतंक बढ़ रहा है...यह मकान खेतिहर जमीन पर बना है... पानी का वजन इसे ले डूबेगा... बालू भाई ने मकान बनाते समय इसे पहले क्यों नहीं सोचा था ?

मिसेज दुघानी अत्यन्त कातर स्वर में इच्छानाथ भगवान को सम्बोधित कर रही है... 'तुम्हारे देखते देखते...तुम्हारे सामने हम सब मर जाएंगे भगवान'। कुछ उत्तर देने की इच्छा नहीं होती।

थोड़ा सा सीमित भोजन ... बढ़ता हुआ संकट ... ढेरों बच्चे। थोड़ा सा साफ पीने का पानी है... आने वालों की संख्या 80 है।

...हे भगवन्! भूख से मरना है या आप्लावन से... डरते सहमते हाथ अनायाश बच्चों के सिर पहुंच जाते हैं...

एक बड़े से पतीले में, पानी में, चाय की पत्ती उबाल ली गई है... काला काला घोल सब लोग शान्ति से... सन्तोष से गटक रहे हैं...सब की आंखें खिड़कियों पर बाहर अटकी हैं।

पीछे की ओर खूंखार, दहाड़ता आता भयानक प्रवाह है... जिसमें जानवर... गाय... भैंसें... कुत्ते... लकड़ियां... छोटा मोटा सामान... झोंपड़ियों के खपरैल बहते आ रहे हैं।

यह क्या ? प्रवाह में बहते हुए केवल दो हाथ... यह कौन आकाश की ओर हाथ फैलाकर रक्षा की भीख मांग रहा है...?

सामने वाले झोंपड़े की छत पर एक दूसरे से चिपके दो तीन व्यक्ति... शायद किसी बांस के द्वारा उन्होंने अपने पानी भरे झोंपड़ की छत फाड़ ली होगी। मनुष्य की जिजीविषा विकट है—अन्तिम समय तक जूझती है। पुरुष है या स्त्री... इतनी वर्षा में अनुमान लगाना कठिन है... जरा सी रोशनी के

झटके के साथ ही उन्हें देख रहे हैं हम सब. . . एक-दूसरे से सटे जा रहे हैं. . . कंपा देने वाले हवा के थपेड़. . .और दनादन वर्षा. . . कोई उन्हें बचा नहीं सकता।

ऊपर एक हैलीकाप्टर मंडरा रहा है. . .हम सब चीख चिल्ला कर. . . हाथ हिला-हिला कर उन लोगों की ओर इशारे करते हैं. . .पर नहीं. . . हैलीकाप्टर कुछ पैकेट गिरा रहा है. . . जो हाथ में नहीं आ रहे. . . प्रवाह में बहते जा रहे हैं. . .

शाम भी आ गई है. . . पानी बढ़ रहा है. . .पर उतनी तेजी से नहीं. . .। शाम से सहम से गए हैं सब . . . केवल दो लालटेंन हैं और तीन टार्च, ठूसमठूस भरा है मकान. . .लेकिन सन्नाटा। कुछ उत्साही युवक इधर-उधर डोलते हैं . . ट्रांजिस्टर पर से गूंजती घोषणाएं. . . 'सुबह तक पानी के उतरने की सम्भावना है' कुछ ढाढस होता है. . .

थोड़ी थोड़ी खिचड़ी. . . केवल बच्चों में बांट दी गई है। मेघाच्छन्न आकाश ने छः बजे से ही अंधेरा कर रखा है. . .। बच्चे इधर उधर लुढ़कने लग गए हैं।

रात के अंधेरे में डूबता जा रहा है सब. . .कुछ दिखाई नहीं देता कि पानी कितना चढ़ उतर रहा है। इसके साथ चिन्ताओं के तेवर भी थम गए हैं. . . केवल एक ठहरी प्रतीक्षा है. . .एक कातर प्रार्थना।

किसी की आंखों में नींद नहीं है. . . 18 घंटे गुजर चुके है. . . सब सोच सोच कर थक चुके हैं. . . विचार—विश्रांति सी आ गई है. . . दीवारों से लग कर, इधर-उधर ऊंघ रहे हैं कुछ लोग. . .

सुबह, तड़के, अंधेरे, चीखा है कोई—'पानी उतर रहा है'। वर्षा अभी जारी है – हवा का चीत्कार उतना प्रबल नहीं है. . .

पानी सच में तेजी से उतर रहा है. . . इस उतरने की अपनी चिन्ताएं हैं. . . अपनी समस्याएं और अपनी बीभत्सता।

दीवारों पर, दरवाजों पर गहरे-गहरे गन्दे कीचड़ भरे निशान। . . .पेड़ पत्ते, खिड़कियों, गेट नल, जंगले. . .सब के सब पानी से धुल नहीं गए, कीच से पुत गए हैं।

इधर उधर लपलपाते हुए, मकानों की रेलिंग से लिपटते जाते सर्प. . . और ढेरों कीड़े-मकोड़े।

यहां वहां बिखरी हुई पशुओं की लाशें। . . .चारों ओर छोटी-मोटी लकड़ियों के जत्थाबंध ढेर. . . यहां तहां अटकते हुए. . . उच्छिष्ट कूड़ा. . . मलिनता. . .अशुचिता।

दुर्गन्ध. . . बदबू. . . कीच . . . सड़ांध. . . सही नहीं जा रही। आकाश कुछ खुल चला है, परन्तु हवा का हर झोंका अपने साथ जिस तरह की सड़ांध समेट कर लाता है उससे खाली पेट में भी उबकाई गुड़गुड़ाने लगती है. . .

अभाव . . . भोजन का अभाव. . . पानी का अभाव (बिडम्बना देखिए). . . रोशनी का अभाव. . . सूखी हवा का अभाव. . .

जब तक पूरा पानी उतरा हर वस्तु अपना रंग खो चुकी थी. . .। कौन कहता है पानी का कोई रंग नहीं होता... । कौन कहता है पानी सा कुछ आरामदेह और शीतल नहीं होता. . . किसने कहा था ?

यह यातना तो एक घर की थी. . . शहर से कुछ बाहर एक बस्ती की. . . सुना है झाँपा बाजार में बिजली की तारों के बराबर पानी भरा था. . . लगभग 13 फीट. . . जिन घरों में सीखचे न थे, वहां से ऊपरी मंजिल की खिड़कियों से बह गए हैं बच्चे।

बहुतों ने ऐसी भयावनी रातें वृक्षों पर काटी हैं . . .।

सामने सड़क की तलछट पर तीन लाशें बच गई हैं. . .। तीन इंजीनियरिंग कालेज के विद्यार्थी। यह अभागे बिस्कुट और इडलियां पैकेट में भर कर अपने साथियों को होस्टल में पहुंचाने चले थे. . . जहां सबसे पहले पानी घुसा था. . ,।

रेनकोट और गमबूटस में तैनात. . . निर्भीक चले आ रहे थे चारों। सड़क कई फीट पानी से लबालब भरी थी।

उस सड़क पर उन्हें पुलिया कहीं दिखाई नहीं दी. . .पुलिया के नीचे का नाला. . .पूरे बल से. . .पानी खींच रहा था। अपना पेट भर रहा था।

इस खिचाव के कारण पानी की सतह के नीचे एक दूसरी प्रतिधारा पैदा हो गई थी. . . । पाँव वहीं उखड़ जाते हैं. . . । बायें मकान है एक. . . उधर बढ़ने की कोशिश, वह भी सामूहिक . . . चारों हाथों में हाथ डाले . . . गमबूट्स के कारण निश्चय ही भारी हो गया होगा, चलना. . . कितनी निचाई है, पता नहीं लगता. . .और छप्छप् पानी में. . . एक नृशंस गड़गड़ाहट ने जो पानी को भंवर बना कर बारबार निगल रही थी. . . इन्हें निगल लिया। तीनों को एक साथ।

चौथा जो छूट गया था. . . भौचक्क एक मछुए के लड़के द्वारा खींच लिया गया और पेड़ पर चढ़ा लिया गया. . .।

सुना है वह अब तक सिर्फ टुकर टुकर देखता है. . .बिल्कुल नहीं बोलता. . . बोल नहीं सकता।

यह तीन शव सिविल हस्पताल में भेज दिए गये। प्रसारण के सब साधन गायब। सूरत कट गया है सब ओर से. . . अभिभावकों को सूचना देना कठिन है. . .।

बहरहाल तो पहिचान भी कठिन है. . . शरीर फूल गये हैं. . . रेन कोट में क्षत विक्षत मांस के टुकड़े एक गठरी की तरह बंधे पड़े हैं।

पानी और पानी. . . इधर उधर पानी. . .पानी के साथ जीते रहे हैं. . . परन्तु अब पीने को एक बूंद साफ पानी नहीं है. . . आंखों के सामने तैरता है. . . वही संडाल के गटरों में से

(शेष पृष्ठ 24 पर)

दिविक रमेश की कविताएँ

भीग रहा है पेड़

भीग रहा है पेड़
भीग रहा है चुपचाप
समाधि लगाए
बिना हिलाए एक भी पत्ता ।
पत्तों पर पड़ती हैं बूंदें
टपक जाती हैं
और जमीन पर उगी घास में
समा जाती हैं ।
किसने दिया हरा रंग घास को !
पत्तों से टपकी
बूंदें तो नहीं थीं हरी !
टहनी पर बैठे कौवा-कौवी
फड़फड़ाते हैं पंख
बार बार छिपाते हैं
पंखों में गीली चोंच को
उड़ नहीं जाते !
बादल दूर मुस्काता है
खींचकर विशाल जबड़ों को ।
पूरे दृश्य के बीच समाधिस्थ मैं
खुद में महसूस करते हुए फड़फड़ाहट
मुस्का देता हूं ।
कुछ रंगों की गीली
एक ताजा चित्रकारी
पंखों पर टिकाए एक पक्षी
उड़ता चला जाता है आकाश में
हिल हिल जाते हैं रंग ।
प्रकाश अब कुछ ज्यादा हो गया है ।
आह
भीग रहा था पेड़
भीग रहा था चुपचाप
समाधि लगाए
बिना हिलाए एक भी पत्ता !

पिता

बुझता रहा है पिता का चेहरा
पिता की मर्जी के खिलाफ
पिता का चेहरा बुझा बुझा सा है
जंग खायी मशीन सा
पिता के चेहरे पर
रौनक नहीं है
बुझा बुझा होकर भी
पर तपिश है पिता के चेहरे में
तपिश है और गोस्सों की ताजा राख सी
पिता के चेहरे में तपिश है और छिटपुट चिन्गारी भी
पिता के चेहरे में थकी हुई आस है
पिता के चेहरे में सम्भावित प्रकाश है

बी-57, अमर कालोनी,
लाजपत नगर, नई दिल्ली-24

फूला है सेमल का पेड़

भीतर-बाहर का फर्क
तुम नहीं जानते सेमल
वरना
कुछ तो निभायी होती दुनियादारी
अब देखो न
भीतर की आग
टहनियों से दिखा दी
परवाह नहीं की पत्तों की
झरते गए
क्या मिला
बस यही तो
आग जो थी भीतर
दबाए दबाए
बाहर से चिकना-चुपड़ा बने रहने की जिल्लत
नहीं उठानी पड़ी
सेमल
पर तुम जानते नहीं भीतर-बाहर का फर्क
पर यह भी मानना होगा सेमल
तुम रग्गू काका की तरह दब्बू नहीं हो
न ही भविष्य की सुरक्षा के नाम पर नाक रगड़ू ही
रग्गू काका के मन में
बहुत बार आता है सिर फोड़ दे 'हकदार' का
पर बखूबी जानते हैं रग्गू काका
भीतर-बाहर का फर्क
सेमल
तुम नहीं जानते
दिखा बैठे भीतर की आग को
बाहर
टहनियों पर लाद लाद फूलों को
कर ले जो करना हो किसी बदजात हवा को
हो जाएं शहीद चाहे कितने पत्ते !

उस पार

★ सुधांशु रंजन

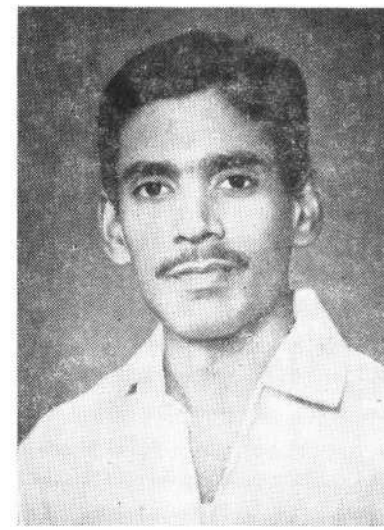

उस बूढ़े आदमी से
मेरी मुलाकात
रोज नदी के किनारे हो जाती
वह घंटों
वहां बैठा रहता
नदी को निर्निमेष निहारता
फिर अपने-आप से जैसे कुछ बोलता
मुझे लगा
यह कोई 'एबनॉर्मल' आदमी है
आखिर उससे एक दिन मैंने पूछ ही लिया
रोज-रोज यहां आकर बैठते हो
कोई खास वजह है क्या ?
उसने कहा—जी, हां !
मैंने वो कारण जानना चाहा
उसने बतलाया
पहली बार यहां पर वह कई साल पहले आया था
उसे यह नदी पार करनी थी
वह बिना रुके पानी में
बढ़ता गया था तब तक—
जब तक कि पानी उसके नाक तक नहीं पहुंच गया
और उसे वापस आ जाना पड़ा था
उसके सामने बहुत-से लोग
नाव से आर-पार हो रहे थे
कुछ लोग नदी तैर कर पार कर रहे थे
वह सोचने लगा
कि वह नदी में डूबने लगता है
जब कि नाव इसके सीने को चीरती हुई निकल जाती है
तैरने वाला हाथ-पांव पटक कर पार कर जाता है
ऐसा क्यों है ?
यह तो वह भी समझता है
कि नाव की तरह उसके पास पतवार नहीं है
और न उसे हाथ-पांव ही पटकना आता है
वह परेशान है
एक दूसरे सवाल को लेकर
क्या नदी एक पतवार के डर से
अपना सीना नाव द्वारा
चिरे जाने को छोड़ देती है ?
एक व्यक्ति के हाथ-पैर पटकने के डर से
वह चुपचाप रह जाती है ?
और इस सबसे भी ज्यादा यह
कि यह विशाल नदी डर क्यों जाती है
मामूली-सी चीज से ?
यही "क्यों" उसे तब से साल रहा है
जिसका जवाब पाने वह हर रोज वहां आता है
हंस पड़ता हूं मैं—
तुम्हें इतने दिनों में जवाब नहीं मिला न
मिलेगा भी नहीं
वह पूरे आत्मविश्वास एवं दृढ़ता से कहता है—
नदी को इसका जवाब देना ही होगा
मैं कहता हूं
तुम्हें जाना था उस पार
और एक सवाल के चक्कर में पड़कर रह गए यहीं
अब भी तो चले जाओ
लेकिन उसने भी ठान लिया है
इस सवाल का जवाब जाने बिना
आगे नहीं जाना है
क्योंकि उसके खयाल में
इसके बिना आगे की यात्रा ही व्यर्थ होगी
आज जब मैं वहां गया
उसे अपनी जगह पर नहीं पाया
चारों तरफ नजरें दौड़ायीं
तो पाया की उस बूढ़े व्यक्ति की लाश नदी में तैर रही है
और वह हाथ-पैर नहीं पटक रहा है

—मुहल्ला तिलक नगर, बेगू सराय-851101

दीवाली

★ जगदीश चन्द्र शर्मा

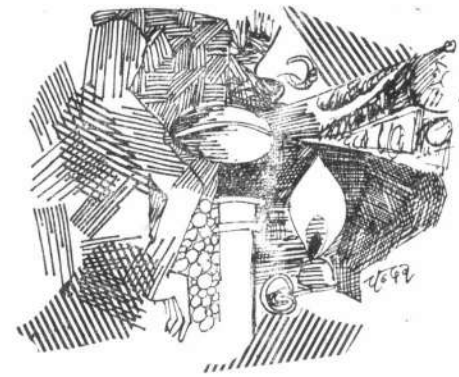

ज्योति-प्रसारण का है सुंदर मेल दिवाली;
मन मोहक इच्छाओं का है खेल दिवाली।
फली भूत हो उठी सफलताएं जैसे, आरती पर;
यह उपहार सभी को देने आया है शुभ अवसर।
दीप शिखाओं के फूलों से लदी हुई है,
छाई दिशा-दिशा में जगमग बेल दिवाली।
तोड़ विषमता की दीवारें, समता का आयोजन,
बढ़ा रहा भाई चारे का जैसे, रिश्ता पावन।
किरणों के झाड़ू से अंधियारा बुहारती
और समस्याओं को देती ठेल दिवाली।
एक-दूसरे की हमदर्दी में सब बने सहायक,
यही रास्ता है जीवन का सर्वाधिक उन्नायक।
घर-घर में झिलमिला रही उल्लास लुटाती,
नन्हें-नन्हें से दीपों की रेल दिवाली।
चिंतन होता स्वस्थ श्रेय के माध्यम से जीवन भर,
जनहित का आधार इसी से बनता है निश्चय उर्वर।
नई रोशनी के प्रसार का बिगुल बजाती,
बन कर आई बाती, दीपक, तेल दिवाली।

पो० गिलूंड-313207 (राजस्थान)।

जिन्दगी : जिन्दगी

मृदुला अरुण

जिन्दगी ?
एक बन्धन !
एक अटूट दुःख-दर्दों का स्पन्दन !!
व्यथा की मार एवं जन्म मृत्य का क्रन्दन !!!
जिन्दगी ?
एक सहारा !
एक अनमोल भाग्य का सितारा !!
तूफानी समुद्र में लहरों से दूर किनारा !!!
पहेली ?
और जटिल किन्तु सत्य !
मानव का मन और पाप का पथ्य !!
क्या बूझे जो उसने किये कृत्य ???
यथार्थ ?
वास्तविकता से दूर अबूझे !
वह जो हकीकतों से जूझे !!
कौन है जो इस प्रश्न चिन्ह को बूझे ?!!

सी-207, आई०एफ०सी० स्टाफ कालोनी,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली

क्या फर्क पड़ता है

पद्ममाशा

बेमौसम बादल।
मेरी आंखों में घुटे हुए
आंसुओं की तरह बेजार बरसो
कोई बीमार नहीं है इस घर में
तुम शौक से खिलो
शौक से हंसो बुरुस के लाल पुष्पगुच्छ
कविता नहीं है जिन्दगी
जलती हुई धूप अपने माथे पर
झेलता हुआ
बोला है पीला अमलतास—
वहां रोज ही मनाये जाते हैं जश्न
क्या फर्क पड़ता है
तुम अंधेरे में खड़े रहो चुपचाप
या तुम मुस्कराओ
खूब मुस्कराओ

टीचर्स फ्लैट नं० 6
एम०डी०डी०एम० कालेज,
मुजफ्फरपुर, बिहार

ग़ज़ल

★ मधुर नज्मी

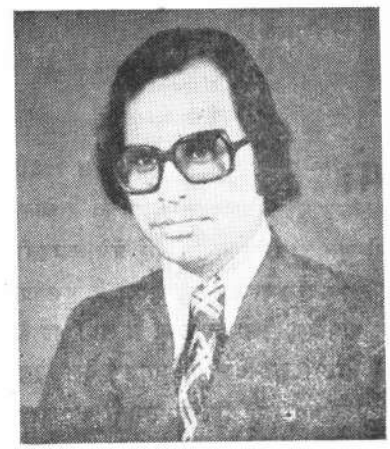

दर्द कितना गभ्भिन हो गया—
आदमी आलपिन हो गया !!
रात की बात ही छोड़िए—
सांवला आज दिन हो गया !!
हादसों की हंसी शह्ल में—
बन्धु जीना कठिन हो गया !!
बज के खुशियों में यह आदमी—
गम की इक वायलिन हो गया !!
आज तहजीब का देखिए—
कितना मुखड़ा मलिन हो गया !!
अपने किरदार की मौत से—
आदमी मुतमइन हो गया !!

उ० प्र० राज्य विद्युत परिषद
विद्युत वितरण खण्ड प्रथम,
सिधारी, आजमगढ़

(पृष्ठ 20 का शेष)

गुड़गुड़ा कर चढ़ता हुआ पानी. . . गिलास हाथ में थमा रह जाता है. . .

ब्रेड की दुकानों पर लूट पड़ गई है. . . कुछ सड़े गले केले. . . सीले हुए बिस्कुट. . . अनाज गोदामों में सड़ रहा है।

सड़कों और रास्तों पर रपटन और फिसलन. . . वहां से तो कीच और दलदल बुलडोजर द्वारा हटाई जा रही है. . . परन्तु घरों में हाथ लहू लुहान हो रहे हैं. . . । एक-एक दरार और दरीचा कीच से भर गया है. . . लकड़ी की अलमारियां, खिड़कियां, दरवाजे फूल गये हैं...उनसे हर घड़ी पानी टपकता रहता है. . . टप टप...।

धरती के नीचे उच्छिष्ट ले जाने वाली नालियों का संचार रुक गया है. . . पानी आगे नहीं जाता. . . दलदल ने सब कुछ रोक दिया है।

खम्भे. . . बिजली के, टेलीफोन के. . .सब ढह गये हैं. . . बड़ेबड़े पेड़ों के रुख पलट गये हैं. . . नदी किनारे की पूरी पूरी बस्तियां घुल गई हैं. . . वहां कूड़े के ढेर बचे हैं रोते-रिसते।

सड़कों की पथरीली छाती भी बड़े बड़े घावों से भर गई है। रेल की पटरियां मीलों तक टूट गई हैं। बम्बई, दिल्ली लाइन इतिहास में पहली बार डेढ़ महीने तक बन्द रही है. . .

शहर को घेरने वाली पुरानी ऐतिहासिक दीवार भी अपने सत्व की रक्षा नहीं कर सकी है। मिलों, कारखानों की मशीनें बन्द। यातायात बन्द. . . डाक बन्द. . . आवागमन बन्द. . . सब ओर से कटा हुआ एक क्षत विक्षत शहर—शीलन, सड़ांध, वीभत्सता से भरा. . . । प्रकृति चाहे तो कितनी हिंसक, कितनी नृशंस हो सकती है।

सूरत का चेहरा मेरे सम्मुख है. . . दलदल से पुता. . .दागों से भरा. . . अपंग, घायल, वीभत्स। उस मुख पर शान्ति नहीं है, व्यग्र जागता हुआ सन्नाटा है, जिसकी गीली आंख नभ को, आहत व्यथा से देख रही है एकटक, और प्रश्नाकुल हो रही है।

स्फूर्ति से जागृत रहने वाले नगर के वातावरण में श्रम की थकान है. . . पहिचानों के गडमड हो जाने की उलझन और आकारों के विस्थापित हो जाने की गहरी सोच. . . टूटन, क्षति, उदासी।

वातावरण गीला बोझिल है. . . मन बोझिल है. . . उदासी है। मैं सोचती हूं. . . वे सोचते हैं. . . सब के सब सोचते हैं कि वह पुराना नगर. . . गति-स्फूर्ति भरा नगर अब कभी जन्म नहीं लेगा. . . नहीं ले सकेगा; क्योंकि दीवारों पर पुते हुए पुराने विज्ञापन, मोड़ों पर के चिकने घुमाव. . . परिचित कोने, अन्तरंग क्षणों की आद्रता में यहां वहां बिखरे हुए स्मृति चिह्न. . . सब मिट गये हैं. . . डूब गये हैं. . . पुत गये हैं. . . अब कभी सब कुछ वैसा नहीं हो जाएगा. . . नहीं हो सकता।

हताशा, निराशा से प्राण डूबते हैं. . . बाहर से आंखें मूंद कर अर्न्तमुखी हो जाने का जी चाहता है। पर...

अभेद अंधेरे में एक नन्हीं किरण सी आश्वस्ति, मन के गहन को, दबे पांव टटोलने लगती है...कहने लगती है—यह सारे नगर, बाजार, पुल, सड़कें, मकान—यह सब कुछ—यह सारी सभ्यताएं अन्ततः तो इसी अपराजेय मानव की रची हुई हैं। . . . यह सच है कि बहुत कुछ पुराना पुनर्जीवित नहीं हो सकेगा...परन्तु बहुत कुछ नया भी तो जन्म लेगा। इस होने में जो शुभ है, वही तो—वही तो मानव मात्र की उपलब्धि है।

1/2, सर्वप्रिय विहार
नई दिल्ली-110016

सार्वभौम जन चेतना में जीवन मूल्यों को खोजते कुमारिल स्वामी

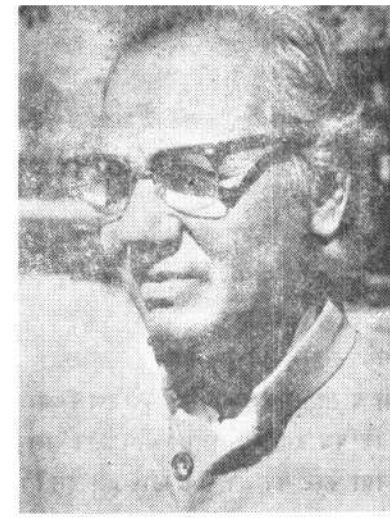

★ विमला रस्तोगी

चित्रकला के इतिहास में भारत का योगदान संसार के किसी भी देश की तुलना में कम महत्व का नहीं है। भारत के प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक मिली चित्रकला की अविछिन्न परिपुष्ट परम्परा इस बात का प्रमाण है कि जहां एक ओर भारतीय मनीषियों ने अध्यात्म के उच्चतम तत्वों पर विचार किया, वहीं दूसरी ओर मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न शिल्पों और कलाओं की उपयोगिता पर भी बल दिया।

भारतीय चित्रकला की राह में कुमारिल स्वामी मील का एक पत्थर हैं, जिन्होंने सही अर्थों में भारतीय कला की आत्मा को भारतीय-स्वरूप दिया। उनका प्रत्येक चित्र भारतीय सभ्यता, संस्कृति का जीता-जागता नमूना है। परम्परागत चित्रकारों में उनका नाम सितारों में चांद सा चमकता है। बाहरी प्रभावों से मुक्त कुमारिल स्वामी अपनी परम्पराओं के संस्कृति दिगंचल के विस्तार में जीवन के मूल्यों को खोजते हैं।

कुमारिल स्वामी की कला जन-जीवन के निकट उन उदात्त आदर्शों को उभार कर सामने लाती है जिनसे सप्रवृतियों को प्रश्रय मिलता है। अत्याधुनिक कला पद्धतियों के विपरीत उनकी शैली न अधिक प्राचीन है न अर्वाचीन। रंग न एकदम चटख हैं न एकदम उदास। देश के बहुत कम कलाकार रंग संयोजन में इनके बराबर आ सकते हैं। अपनी खूबसूरत रंगयोजना से इन्होंने प्राचीन भारतीय वाड्.मय की ओर विदेशियों तक का ध्यान आकर्षित किया है।

चक्र

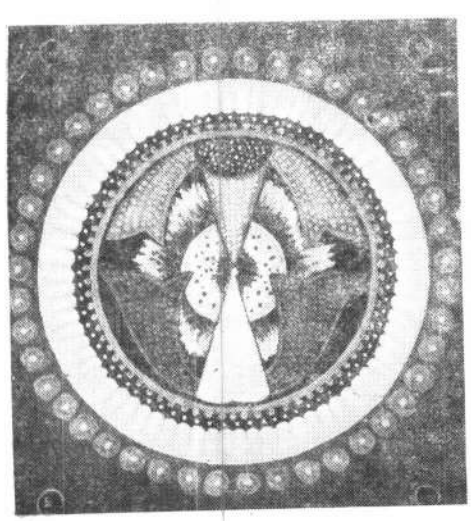

कुमारिल स्वामी का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को सन् 1924 में हैदराबाद राज्य में तेलंगाना क्षेत्र के एक छोटे से गांव करीम नगर में हुआ। पिता श्री राजलिंगम लोकसंगीत के जानेमाने गायक थे। दुर्भाग्यवश छः वर्ष की अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो गई। संघर्षशील, निर्धन कृषक परिवार, उस पर बच्चों का बोझ, माता राजम्मा को बड़ी तंगी और असहायावस्था से गुजरना पड़ा। अतः बचपन में नियमित शिक्षा न मिल पाने के बावजूद भी कला की ओर इनकी नैसर्गिक रुचि थी। जब ये 12 वर्ष के थे एक लड़की गांधी जी का चित्र बना रही थी। उसकी रंग संरचना इन्हें पसन्द न आई, और इन्होंने स्वयं रंग भरे। लड़की को उस चित्र पर पुरस्कार मिला, इनमें आत्म-विश्वास जागा। हैदराबाद के चित्रकार चिन्ना स्वामी से इन्हें बड़ी प्रेरणा मिली, 1937 में ठक्कर बापा के सम्पर्क में आकर दिल्ली बस गए। ये उस समय सामाजिक कार्यकर्ता थे। ठक्कर बापा व गांधी जी को जब इनकी कला में अभिरुचि का पता चला तो उन्होंने इन्हें शारदा उकील स्कूल आफ आर्ट्स देहली में भेज दिया। तत्पश्चात् 1944 में शान्ति निकेतन भेज दिया। जहां स्व० श्री नन्दलाल बोस के संरक्षण में इनकी कला परवान चढ़ी। गांधी जी व ठक्कर बापा जैसी महान विभूतियों को कुमारिल स्वामी के विकास में अभिरुचि थी, यही कारण है कि कुमारिल जी सम्पूर्ण जीवन गांधी दर्शन को समर्पित है। गांधी जी के आदर्श जीवन के मार्ग दर्शक हैं।

इनका प्रथम चित्र शिव का था। बाद में जातक कथाओं, रामायण, महाभारत, पंचतन्त्र तथा अन्य अनेकों ऐतिहासिक प्रसंगों को लेकर चित्र बनाए। 'वेणुवन में बुद्ध', 'चैतन्य महाप्रभु', 'मीरा', 'अजात शत्रु', 'कर्ण,' 'परशुराम', 'महाराणा प्रताप', 'प्रतीक्षा', 'बहनें', 'मां और बच्चा', 'एक लड़की' 'गांधी और नेहरू' आदि इनके कुछ प्रसिद्ध चित्र शिक्षामंत्रालय (भारत सर-

कार), कला भवन शान्तिनिकेतन, अमेरिका, बुल्गारिया और यू० एस० एस० आर० के म्यूजियम, राष्ट्रीय कला संग्रहालय नई दिल्ली, नेशनल आर्ट गैलरी, ललित कला अकादमी, सालार गंज म्यूजियम हैदराबाद, चण्डीगढ़ म्यूजियम तथा बिरला के म्यूजियम में आपकी कलाकृतियां रखी हैं।

कुमारिल स्वामी की कला में विषय वैविध्य है। सन् 1953 में भारत सरकार द्वारा अनुसंधान हेतु इन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। जिससे उन्होंने नेपाल, कश्मीर, अजन्ता एलोरा आदि के साथ सभी प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। कश्मीरी जन-जीवन को विविध रंगों में बांधा, अधिकतर जलरंगों का प्रयोग किया। कैलिग्राफिस्ट की तकनीक को ही इन्होंने अपनाया। रेखांकनों के सन्दर्भ में सौम्य रंगों को इन्होंने बखूबी फैलाया। रेखाओं का सौष्ठव आकर्षक बन पड़ा है। नीले, लाल, जामुनी, पीले रंगों के साथ-साथ हल्के रंगों का भी प्रयोग किया है, टेम्परा और वाशशैली को अपने चित्रों के निर्माण द्वारा कृतार्थ किया है। सच्चे कला साधक कुमारिल स्वामी ने 1962 में उत्तराखण्ड के सुरम्य शैलखण्डों के बीच रहकर निरन्तर कला साधना की।

हर कलाकार का अपना खास अन्दाज, ढंग व मौलिक सृजन की विधाएं होती हैं। कुमारिल स्वामी कला के नवोत्थान में उन आदर्शों, उद्देश्यों और आत्मोपलब्धियों के कायल हैं, जिसमें जीवन के सत्य और अंतरंग भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण है, अतएव वह सौन्दर्य बोध की एक मात्र कसौटी दर्शक पर पड़ने वाले प्रभाव को मानते हैं। उनके अनुसार उस सत्य की उपलब्धि और खोज के लिए मन की आंखें चाहिए।

मैंने प्राचीन और पाश्चात्य कला चेतना पर उनके विचार जानने चाहे तो उन्होंने कहा—"प्राच्य और पाश्चात्य कला

रहस्य

मिलन

चेतना में कोई खास अन्तर नहीं है। चेतना सार्वभौम है, अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।"

आधुनिक कला के बारे में उन्होंने अपने विचार रखते हुए कहा—"आधुनिक कलावर्ग विदेशियों की कला शैली का तो पिट्ठू है किन्तु वह स्वयं अपनी कला से उन्हें कहां तक प्रभावित कर पाते हैं इसका ज्ञान उन्हें नहीं है। आज के कमजोर चित्रकार मॉडर्न आर्ट में जा रहे हैं उनमें से कुछ जैसे स्वर्गीय राम किंकर आदि ने बहुत अच्छे ढंग से काम किया था।

कुमारिल स्वामी की खूबी है कि वह आज की प्रचलित कृतिमता से दूर मौलिक प्रतिभा द्वारा दिल की गहराइयों की राह समस्त जनमानस के साथ अछूते ढंग से गहरा सम्पर्क स्थापित करने में जुटे हुए हैं।

पुरस्कारों के मोती भी उनकी कला साधना की माला में यत्र-तत्र-सर्वत्र जुड़ते रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तेलुगु महासभा ने 1975 में पुरस्कृत किया, 1977 में बुल्गारिया में हुई अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी विषय—'ह्यूमर, सटायर एण्ड लाइफ' में आपके दो चित्र पुरस्कृत हुए। साहित्य कला परिषद ने भी इन्हें सम्मानित किया।

दूसरों के दुःख में दुःखी, सुख से सुखी होने वाले, आडंबरों से रहित, सादगी की प्रतिमूर्ति स्वामी जी को कुर्ते पायजामे के साधारण लिबास में देखकर अन्दाजा लगाना मुश्किल है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जन्मजात सिद्ध योगी हैं। जी हां, स्वामी जी गत 8-9 वर्षों से स्वामी हो गए हैं। उन्हें अन्तर्रात्मा से भगवान के दर्शन होते हैं, अपने पूर्व जन्मों का आभास है पहले दो जन्मों में वे साधु थे। वह कुंडलिनियां जागृत करते हैं। आप अपने 5 नेत्र मानते हैं—2 प्रत्यक्ष, 3 अप्रत्यक्ष सूक्ष्म चक्षु।

शराब तथा सिगरेट से दूर अल्पाहारी यह चित्रकार किसी माडल का मोहताज नहीं। नेत्र बन्द किये, कल्पनाएं साकार हुईं, रेखाएं उभरी और रंग एक के बाद एक स्वमेव लगते गए। अभी तक व्यवसायिक कला से दूर रहे हैं। पारिवारिक जीवन-कला साधना के आगे कभी नहीं आया। अब तो वह कला और ईश्वर में ही रमे हैं। महात्मा गांधी ने कभी कहा था, "कुमारिल एक दिन ईश्वर को पा लेगा।" महात्मा गांधी का ईश्वर और कुमारिल का अरूप एक ही तत्व के दो रूप हैं।

प्रस्तुत तीन चित्र चक्र, रथा और रथ तथा 'रहस्य' उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति और रहस्य की खोज के द्योतक है। □

द्वारा श्री कीर्ति प्रकाश रस्तोगी
साइनामिड इंडिया लि०, पो०बो० 7049
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

★ प्रणय

'...न्न न्न न ना ना···अब कभी न जाऊंगी चाहे मनिस्टर नहीं, कलक्टर आवे···मैं तो सिरिफ हेलिकप्टर देखने गई थी···इत्ती भीड़ कि एकदम रेलमपेला···अररा पन्द्रा दिन तक मेरी छाती पिरानी है···लोग बिटियन को अइसा देखते हैं कि कच्ची चबा जायेंगे···जानवर हैं जानवर···जो हमें छूने में बिचकते हैं। भीड़ में चिपिक-चिपिक जाते हैं··· इत्ते मक्कार कि दिन के उजाले में छू जांय तो नहाते हैं, और रात के अंधेरे में—मोर दइया कनिया में उठा लेते हैं···झुठ्ठे दहिजार···हां···'

'अरे मरद को जात—राम कसम सौ हाथ नीचे घर देने की चीज है। सच्ची कहूं अगर प्राणभय के खूंटे से उसे ढील दिया जाय तो दूसरों की सारी इज्जत-आबरू चर ले···वह जहां भी जाता है...गंदा कर देता है और हर जगह पहुंच जाता है लच्छू कहां जाये कि गन्दगी से बच सके आखिर ऐं ?'

किसी गंदगी को सूंघती सी लच्छू ने माला भाभी की ओर देखा, फिर उधेड़े हुए जानवर के ढचरे के पास जाकर खड़ी हो गई। हड्डियां चबाते हुए कुत्ते बेमतलब गुर्राये थे। बचे-खुचे मांस को खुरचते हुए गीधों को हटाने के लिए हुस्स की एक आवाज के साथ लच्छू ने दोनों हाथ उठाये थे। फिर माला भाभी को सुनने लगी थी।

'···जब मुझे चौधरी पंजाब भगा ले गया था मैंने सहा मरद कित्ता भूखा होता है···'

लच्छू हंसना चाह रही थी लेकिन भाभी के गंभीर चेहरे को देख वह क्षुब्ध हो उठी।

'···मुझे गिरफ्तार करके दो पुलिस वाले ट्रेन से लाये थे··· कमीने पूरे लम्बे सफर में···'

माला के बोल पिघल गए। उसको जाने किसने इत्ता अच्छा नाम दे दिया था—सिर्फ नाम भर। लच्छू स्वाद से हड्डी चबाते कुत्तों को घूरती रही।

'मैंने दोनों की हविस चौधरी के सामने तरह-तरह से सही ···एक लुच्चे ने तो जता दिया कि मरद कित्ते नीचे जाकर जीता है।···उस रात दिन के सफर में पांच बार औंधे मुंह लेट जाने को मजबूर कर दिया···मेरी जांघ का कच्चा फोड़ा चिलक-चिलक कर फूट आया था···छि···मैंने उसके मुंह पर थूक दिया था।"

माला भाभी के तमतमाये गालों पर पानी उग आया था। लच्छू चुपचाप खड़ी थी।

'एक स्टेशन पर एक खूसट सेठ ने उन सिपाहियों को चाय-पान करवाया - जिसकी कीमत उस तोंदियल ने मेरे ऊपर सोकर निकाली···मैं···मैं गीधों के बीच मांस का एक लोथड़ा···दर-असल मुझे वक्त मिलता तो मैं चलती ट्रेन से कूदकर मर जाने में आमदा थी···मगर···'

'बरी बाधी यह बोलो कि हथियार मिल जाते तो उनका

सफाया कर देती !' लच्छू ने आवेश में कहते हुए ढचरे की एक पसली को पांव द्वारा तड़ाके से तोड़ दिया।

'हां लच्छू...मगर असुरक्षित आदमी को यही सूझता है। क्योंकि उसके बाद ऐसा कुछ नहीं होता कि सही सन्तोष मिले··· ठोस सबूतों की कमी···घिनौने, भोंड़े सवालों का जवाब··· फिर···ज्यादा से ज्यादा तबादला। सचमुच होना क्या चाहिए— कई तरह से सोचने के बाद उसकी वही कायराना हिम्मत काम देती है—जिस पर गंदे से गंदे लोग तक इतनी बड़ी हिम्मत पर थूकते नहीं अघाते।'

वह कुछ बिसूरने लगी।

गीधों की केक्क-केक्क उबाऊ आवाजों से त्रस्त लच्छू ने दूर तक दो-तीन गीधों को खदेड़ा। माला भाभी ने भी इसमें रुचि ली। वे एक तरफ हटते हुए उदास-उदास खड़े हो गये तो भाभी ने ठठरी पर पांव रखा।

'भैंस है की बैल ?'

'मुर्रा भैंस है भाभी। सींगे देखो···खासी मस्त भैंस थी। मुश्किल है कि पूरी मांजर हम दोनों से चली जाए'

'अरे हाड़, ढोते-ढोते अपनी हड्डियां परपरा गई हैं···खाने को नून-रोटी···नहीं अकेले ले जाती—लच्छू।'

'अगर अइसे ही महीने दो महीने तिलबढ़ का रोग जमा रहा तो रकम भी कट जायेगी भाभी।

हां इलाका भी तो मवेशियों से चम्म हो जायेगा,

माला भाभी हंसी थी।

'और फिर रकम हमारी क्या कटेगी—इलाके भर का हड्डी ठेकेदार बशीर है···व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि हमारी गरीबी और उसकी अमीरी आबाद रहेगी है न भला ! चलो बांधो।

दोनों ने माजर को तोड़ना शुरू किया। गर्दन को तोड़कर पसलियों के अन्दर कर लिया, टांगें मरोड़ कर अलग बोझ बना लिया। एक भैंस की ताजा हड्डियां दो बोझों में बंट गई। दोनों ने आपसी सहारे से सिर पर बोझ उठा लिये।

कछोटा बांधे, सफेद डोभ वाले परिधान में लच्छू खड़ी हुई तो गीधों ने देखा था गोया सभी उड़-उड़ कर उसके सिर पर बैठ जायेंगे और बचे खुचे गोश्त को खंरोचने-खाने के बाद ही उड़ेंगे। मगर बिना डकारे हुए सभी ने बैठे-बैठे दो-दो हांथ लम्बे पंख फैला लिये कि—ननद भाभी समझ लें—इत्ता-इत्ता ताजा गोश्त खाया है या अभी इत्ता-इत्ता और खायेंगे।

बस्ती के किनारे-किनारे दोनों चल रही थीं। हड्डियों पर हड्डियां लादे हुए बतियाती रहीं—

भाभी तूने कुछ खाया है सबेरे-सबेरे ?

'नहीं लच्छू तड़के भूख नहीं लगती। थोड़े से महुवा और चने भून लाई हूं। आंचल में बांधे हूं···लो थोड़ी-थोड़ी चबां लें। पानी पीने की आड़ तो हैं ही···फिर एक खेप लगाकर चलेंगी खाने पीने।'

सिर पर हाड़ लादे, मुहं पर भिनकती मक्खियां हटाते, दोनों महुवा-चने चबाने लगी थीं। रास्ते पर जो भी गुजरा नाक-भौं सिकोड़ते हुए मन ही मन पचासों गालियां दे गया। सिर पर बोझ होने के कारण जबड़े अपनी रफ्तार नहीं पकड़ रहे थे।

एक घन्टा रास्ता नापने के बाद लम्बी पहाड़ी मिली थी। पहाड़ी के बाद तालाब की मेड़ थी। पत्थरों को फलांगते हुए उन्होंने तालाब के किनारे हाड़ पटक दिये। ताजा दुर्गंध से दोनों के नथुने कौंध गए। चने के आखिरी दानों को इत्मीनान से चबाया था दोनों ने। फिर कोई सेवार हटाते हुए जल में पिल पड़ी कि पूरा जल चुल्लुओं में नाप डालेंगी। तालाब थरथरा उठा था।

"—या कि बता सकती हो भूखों को झेलते हुए क्या करना चाहिए—जहां चिल्लाना कोई मतलब नहीं रखता···?"

'ऊं ?' —लच्छू चुप रह गई कि इसके उत्तर में कुछ कहना महज लफ्फाजी है।

'दूसरे मरद को बर्दाश्त करना बड़ी हिम्मत की बात है उससे बड़ी हिम्मत फिर आत्महत्या की है।

भाभी जो भी बोलती उसमें जकड़न होती और लच्छू इस छोटे माहौल से न चाहते हुए भी भागना चाहती।

पास रखी हड्डियों पर कौवे बैठे थे, चीलें मंडरा रही थीं। तालाब की जलराशि की ऊपरी निर्मल परत पर वे कई बार दौड़ी, कदाचित हांफते-हांफते दोनों डूबने को हुईं, बाहर की गंदगी से त्रस्त जलमुर्गी उड़ती हुई आई और टुभ् से डूब गईं। गोली गोली लकीरें चली थीं वहां से। वह चोंच में कीड़े-मकोड़े दबाये बाहर निकली थी।

लच्छू हंसी थी, फिर एक जोर की अंगड़ाई लेती हुई कमर चटका दी—

'चलो भाभी, अभी पूरे एक घंटे का रास्ता बाकी है···माना कि हमारा नहाना-खाना कोई जरूरी नहीं है लेकिन समय से घर पहुंचना तो जरूरी है ही। नहीं गुलजार दद्दा उखड़ पड़ें तो खोपड़ी में तीन तरह की पीड़ा शुरू होती है।

कुछ हल्की-हल्की बातें बतियाती चलीं थी वे।

बस्ती के एक छोर पर गाय—बैल, भैंस, घोड़े, खच्चर, बछड़ों, कुत्तों की खोपड़ियों, टांगों, पसलियों और गर्दन की हड्डियों का अम्बार लगा है। कुत्ते कीमती परिश्रम कर रहे होते हैं। कौवे-चील तमाम से तर्क कर रहे होते हैं। कुछ गीध वहीं कहीं घोंसला बनाने के लिए मुआयना कर रहे हैं। एक तरफ लकड़ी का तराजू टंगा है। बगल में वजनी पत्थरों के बाट पड़े हैं। वहीं एक तरफ एक टूटी खटिया पड़ी है जिस पर पसरा हुआ ठेकेदार बशीर—कबीर के किसी पद की हड्डी-पसली एक कर रहा होता है। कभी-कभी उचककर कुछ देखता है, फिर बीड़ी का सुट्टा मारता हुआ खांसता है। कोई हड्डियां लादे दिखता है तो वह भीतर ही भीतर कुनमुना उठता है।

इस ठौर, जितनी भी हवाएँ आती हैं, अपने गुण बदलकर जाती हैं। ऐसे हर मौके पर बशीर मुंह बिचकाकर देखता है, चारों तरफ सूखे हाड़ों का ढेर है। एक भी मांस का लोथड़ा नजर नहीं आता।

बशीर गिद्धराज सा हड्डियों के चारों तरफ चक्कर लगा रहा है। किसी ने आवाज दी तो वह लगे हुए कामचलाऊ फाटक तक आया—

'अरे पूरा बैल लाद लाये...झाली ...तुम हो तो मरियल मर्द मगर समझते हो कि मेहनत ही मुकद्दर है।

झाली ने कोई नई बात नहीं सुनी थी कि उसका पसीना सूखता, फिर भी उसके सूखे होंठ फैल गये।

तराजू पर हड्डियां पटक, अंगोछे में बंधी तम्बाकू को फांकते हुए झाली ने बड़े-बड़े बाट उठाकर पलड़े पर रख दिये। बशीर ने लिखकर, फुटकल न होने के कारण बाद में कीमत देने को कह दिया। थका-मांदा बेचारा वहीं पिच्च-पिच्च थूकता बैठ गया।

खुले फाटक से, हड्डियां लादे लच्छू और उसकी भाभी ने प्रवेश किया। बशीर खुश हुआ था फिर एकाएक बिगड़ उठा—

'...जब कह दिया कि बाद में लेना तो अड़ कर बैठ गया... कोई भाग थोड़े जाऊंगा...जावो... तुम मेहनत कस आदमी—आराम हराम है।'

झाली को बुरा नहीं लगा। वह अपना हिसाब जोड़ता रहा। खड़े होते बोला था—

'खान साहेब एक तो आप दस पैसे किलो माल लेते हैं उस पर पूरे बैल के हाड़, साढ़े ग्यारह किलो निकले...पता नहीं आपके पत्थर के बाट कैसे हैं—मेरी तो हाड़ लाते-लाते दुर्गति हो जाती है और...'

'दुर्गति ? झाली। रेलवे वाली गैंग के लोग जो दुनिया भर का मलबा हटाकर, गिद्दी खरोचकर रेल की पटरियां ठीक करते हैं—वे अपनी उस घिनौनी मेहनत का क्या पाते हैं... और उन्हीं में से ही एक मेट जो होता है वह हाजिरी लेने और डांटने भर का—उनसे ज्यादा क्यों पाता है—देखा है कभी ? इस दरिद्र मुल्क में मेहनत को महत्व देने वाले तुम मिले हो झाली।'

झाली कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा फिर तराजू और बाटों को निहारता हुआ, फाटक से बाहर चला गया।

बशीर को विश्वास है कि वह हर बात प्रभावशाली ढंग से करता है। फिर असलियत में क्या तर्क करना है। उसने लच्छू को दूर कर देखा था। ऐसे क्षणों में लच्छू हड्डियों का ढेर ताकने लगती है। बशीर और नजदीक आता है, उसे पसीने की गंध लुभाती है।

'हूं।'

'यह दस रुपये का नोट क्यों दे रहे हैं ?

'फुटकल है नहीं, तो...'

'...तो ?'

'फिर समझ लिया जायेगा।'

लच्छू के प्रश्न बशीर को किसी मवेशी की गर्दन की हड्डियों से गांठदार और भद्दे लगे थे।

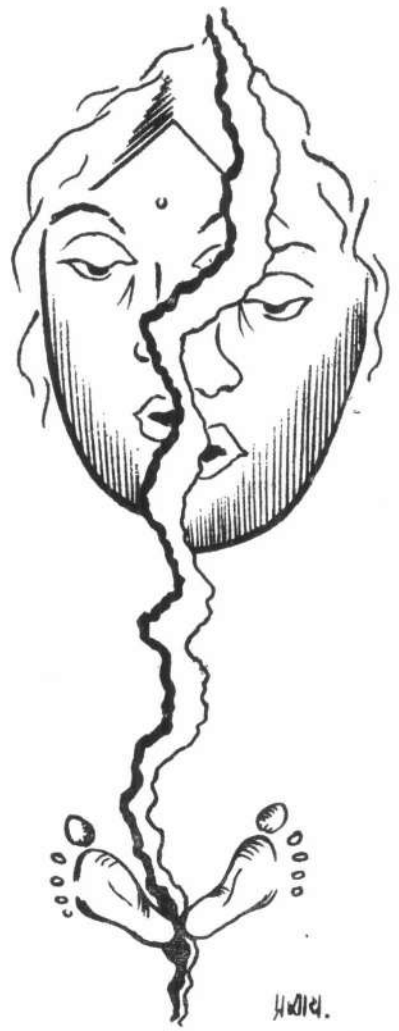

सरज चिटख-चिटख कर जल उठा था। पसीने का चिपचिपाहट ताजे हाड़ों की दुर्गंध लिए माला भाभी अपने छोटे से घर में बैठी लच्छू को कुछ खुसर-पुसर समझा रही थी—

'जरा इनसे कहो चार आदमी के सामने हाथ थांम लें—इनके अन्दर का नाग फुंसकार उठेगा...तुम कहोगी कि भाभी डरा रही है लेकिन...'

'लेकिन किसी का डर होता तो दोपहर तक आराम न करती भागमान। कुछ पेट की भी फिकर करती...सारी चमरौड़ी काम पर निकल गई, एक अजगर तुम हो कि...'

गुलजार दादा ने गलियारे पर खड़े होकर कहा था। लच्छू माला भाभी के पास बैठी, गुलजार दादा को देखकर सहम गई थी फिर बाहर निकलते बोली थी—

'नहीं दादा, हम एक बार हाड़ ले आये—तौला दिया...' किधर जा रहे हैं ?...हम तड़के निकल गये थे।

'अरी...किसके साथ गई थी—गुलजार दादा जैसे खुश हो गए।

'अभी वह नहीं आई—तेरी नई अम्मा ?'

'वह अकेले ही जाती है दादा, मुझको अपने साथ लेकर नहीं चलती।'

(शेष पृष्ठ 33 पर)

साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

★ मंजलि तिवारी

समाज में निरन्तर परिवर्तन होता है। परिवर्तन न होने पर समाज, जड़ रूढ़िग्रस्त और निर्जीव बन जाता है। सुविधा-सम्पन्न वर्ग समाज की यथास्थिति बनाये रखने की चेष्टा करता है, क्योंकि उसके द्वारा बनाए गए संबंध, मूल्य और नैतिकता के अन्य प्रतिमान इसकी सुरक्षा के लिए होते हैं। किन्तु इसके बावजूद समाज बदलता है और नई मानसिकता नए संबंधों और नए मूल्यों का निर्माण होता है। आखिर यह क्यों होता है? मार्क्स अर्थ को समाज निर्माण के केन्द्र में रखता है। उसके बदलने से एक नए समाज की स्थापना होती है, जिसके संबंध और मूल्य बदले हुए होते हैं। साहित्य या कलाएं इस बदलाव की पहचान कर उसे अभिव्यक्त करती हैं। मार्क्स उत्पादन की प्रणाली को मूल ढांचा मानता है। इस प्रकार वह यह स्थापित करता है कि आधार अर्थ है और अर्थोत्पादन की प्रणालियां द्वन्द्वात्मक पद्धति से बदलती रहती हैं। द्वन्द्व होता है शोषक और शोषित में, अर्थात् सम्पत्ति का उपभोग करने वाले सम्पन्नों और सम्पत्ति के उत्पादक अभावग्रस्त श्रमिकों में। इस आधार के बदलने के कारण आधेय (साहित्य, कला आदि) में भी बदलाव आता है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और जीवन ठोस भौतिक आधारों पर खड़ा होता है और उन आधारों के बदलने से बदलता है। इस प्रकार मार्क्स यह स्थापित करता है कि समाज के जीवन में बदलाव ठोस भौतिक परिस्थितियों के कारण होता है और साहित्य उस बदलाव को पहचानता है। लेकिन वह फायर बाख की तरह आर्थिक स्थितियों और साहित्य के संबंधों को यान्त्रिक नहीं मानता। उसका विचार है कि यद्यपि चेतना या प्रत्यय पदार्थ पर आधारित है और उसके बदलाव के अनुसार इसमें बदलाव आता है किन्तु वह निष्क्रिय नहीं होता। वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी बना लेता है और वह भी पदार्थ को बदलने का सचेत प्रयास करता है। साहित्य प्रत्यय है इसलिए यह कहा जा सकता है कि वह आर्थिक स्थितियों के बदलाव के फलस्वरूप समाज में उगे हुए नए संबंधों, मूल्यों और सोच-विचारों को अभिव्यक्त तो करता ही है किन्तु आगे बढ़कर वह स्वयं अपनी चेतना के द्वारा समाज के अवांछित रूप को तोड़कर एक नया वांछित रूप गढ़ने का प्रयास करता है। इस प्रकार वह परिवर्तन की आहटों की एक निष्क्रिय अभिव्यक्ति मात्र नहीं करता। बल्कि परिवर्तन की क्रिया को तेज करने में भी सहायक होता है।

साहित्य और सामाजिक परिवर्तन के संबंधों को भावुकतावादी दृष्टिकोण से देखने वाले लोग प्रायः इस सुन्दर भ्रान्ति के शिकार हो जाते हैं कि साहित्य समाज में बड़ी-बड़ी क्रान्तियां उपस्थित कर देता है। उनका दृष्टिकोण यह होता है कि समाज में अनेक बड़ी-बड़ी क्रान्तियां यानी परिवर्तन साहित्य के माध्यम से हुए हैं। इस सुन्दर भ्रान्ति के शिकार हमारे आज के मार्क्सवादी भी है, जो साहित्य को एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। उसके लिए साहित्य किसानों और मजदूरों के जीवन में परिवर्तन लाने का वैसा ही साधन है जैसा कि कम्युनिस्ट पार्टी का राजनीतिक घोषणा-पत्र।

दरअसल साहित्य के मौलिक स्वभाव को पहचान करके ही हमें सामाजिक परिवर्तन के साथ उसके संबंधों की जांच करनी चाहिए। साहित्य सामाजिक परिवर्तन का हथियार है, यह बात अगर मान भी ली जाये तो यह देखना नड़ेगा कि इस हथियार का काम क्या है? क्या वह हंसिया है जिससे खेत काटा जा सकता है या हथौड़ा है जिससे लोहा पीटा जा सकता है या नक्सलाइटों का गोला-बारूद है जिसे फेंक कर शोषकों को मारा जा सकता है? क्या यह सैनिकों का शस्त्र है जिसमे सर्वहारा की सेना सफलता पाने के लिए लड़ाई लड़ सकती है या वह राजनीतिक पार्टियों की राजनीतिक योजना है, जिससे सत्ता को अपने पक्ष में बदला जा सकता है। जाहिर है, ऐसा कुछ नहीं है। साहित्य की अपनी अस्मिता है। वह राजनीतिक, विज्ञान या किसी अन्य शास्त्र का पर्याय नहीं है। कविता (साहित्य) के संबंध में विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि ···कवि (साहित्यकार) सौन्दर्य से प्रभावित होता है और पाठकों पर सौन्दर्य का प्रभाव छोड़ना चाहता है। सौन्दर्य का स्वरूप एक सा नहीं होता है। वह भी सामाजिक यथार्थ के साथ और लेखक की दृष्टि के अनुसार बदलता रहता है। यदि भक्तिकाल, रीतिकाल, और आधुनिक काल को विविध धाराओं की सौन्दर्य दृष्टियों का आकलन किया जाए तो बहुत अन्तर दिखाई पड़ेगा। जैसे भक्ति कालीन कवि सौन्दर्य की चरम स्थिति ईश्वर में ही देखता था। रीतिकालीन कवि नारी के मांसल में सौन्दर्य देखता था, किन्तु आधुनिक काल में कवियों और साहित्यकारों ने अलग-अलग रूपों में भौतिक सौन्दर्य को देखा और उसका महत्व प्रतिपादित किया।

आधुनिक काल की सौन्दर्य दृष्टि का यदि बिवेचन किया जाए तो उसकी दो धाराएं दिखाई पड़ती हैं। एक धारा की दृष्टि व्यक्ति की आंतरिकता में सौन्दर्य देखती है और दूसरी धारा की दृष्टि सामाजिक यथार्थ और चेतना में। सौन्दर्य-दृष्टि को आत्म-प्रधान और वस्तु-प्रधान इन दो धाराओं में भी बांटा

जा सकता है। जाहिर है कि सौन्दर्य की अन्तर्मुखी या आत्म-प्रधान दृष्टि का संबंध सामाजिक बदलाव की पहचान उभारने या बदलाव की प्रक्रिया से नहीं होता है। इस दृष्टि से लिखा हुआ साहित्य सुन्दर तो होता है और कुछ बिन्दुओं पर वह समाज के बदलाव का संकेत भी करता है, किन्तु उसका सौन्दर्य वह जीवन्तता, चेतना और ऊष्मा नहीं प्राप्त कर पाता जो सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में निर्मित सौन्दर्य प्राप्त कर लेता है। सौन्दर्य चाहे जिस किसी दृष्टि से निर्मित हो, वह सीमित हो या व्यापक बहुत अधिक या कम गहरा, साहित्य का संसार वही होता है और सौन्दर्य की निमिति के मूल में रागात्मक अनुभव होता है, अर्थात् जब लेखक का कथ्य वस्तु के साथ रागात्मक संबंध जुड़ता है तभी वह वस्तु साहित्य का विषय बनती है और इस संबंध के द्वारा प्राप्त अनुभव ही साहित्य को सौन्दर्य प्रदान करता है। इसलिए डा0 नगेन्द्र जैसे रसवादी आचार्य यह मानते हैं कि रस और सौन्दर्य पर्याय हैं, क्योंकि रस का मूलाधार अनुभुति है। चर्चा का निष्कर्ष यह है कि बाहरी जगत जब साहित्यकार से रागात्मक स्तर पर जुड़ता है तब उसको संवेदना उस वस्तुजगत से प्रभावित होती है और जब वह संवेदनाओं को केन्द्र में रखकर साहित्य लिखता है तब उसमें पाठक की संवेदना प्रभावित होती है। इसी को साहित्यकार का सौन्दर्य से प्रभावित होना कहा जाता है।

साहित्य के इस मूल धर्म को दृष्टि में रखकर ही सामाजिक बदलाव के साथ उसके संबंधों की व्याख्या हो सकती है। समाज के पर्याय की सापेक्षता में निर्मित साहित्य की चर्चा यहां अधिक प्रासांगिक है। कहा जा चुका है कि कुछ उग्र ढंग के प्रगतिवादी या जनवादी साहित्य को जनक्रान्ति का एक हथियार मानते हैं। उनके लिखित साहित्य और आलोचनाओं को देखा जाए तो लगता है कि वे साहित्य की संवेदनात्मक प्रकृति पर विशेष ध्यान नहीं देते वे इतना देखना पर्याप्त समझते हैं कि किसी साहित्य में शोषित और संघर्षशील जन की पक्षधरता की गई है कि नहीं।

अपने संवेदनात्मक चरित्र के कारण ही साहित्य अपने आस-पास के जगत से रागात्मक संबंध स्थापित करता है। इसलिए वह समाज को बदलने के उद्देश्य से कुछ सिद्धान्तों या आदर्शों का प्रचार नहीं करता, बल्कि वह अनेक ऐतिहासिक कारणों से बदलते हुए समाज की पहचान करता है। यह सच है कि सामाजिक बदलाव में साहित्य की उतनी बड़ी भूमिका नहीं होती जितनी राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों की या वैज्ञानिक अनुसंधानों की। राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों और वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण हमारे संबंधों में, हमारी मूल्यचेतना में हमारे अनुभव और चिंतन में एक बदलाव आता है। उस बदलाव की पहचान खण्ड-खण्ड रूप में अनेक ज्ञान शाखाओं के लोग कर सकते हैं या करते हैं किन्तु साहित्य उस बदलाव के संश्लिष्ट और गहरे रूप की पहचाव करता है। यह पहचाव ऊपरी नहीं होती। यह समाज के अनुभव चरित्र और सोच में व्याप्त बदलाव की पहचान होती है। इसलिए साहित्य तात्कालिक नहीं होता बल्कि वह इस बदलाव की पहचान से जुड़ा हुआ होने के बावजूद मानव समाज की सुदीर्घ अनुभव परंपरा और मूल्य की बेचैनी से जुड़ा होता है। इसलिए वह एक ओर समसामयिक होता है दूसरी ओर सनातन। दरअसल, साहित्य की सनातनता भी समसामयिकता के आंतरिक स्वरूप की यानी अपने समय के परिवेश के बुनियादी स्वभाव की पहचान से ही आती है, कुछ सनातन तत्वों की परिकल्पना करके, उनके नियोजन से नहीं। इसलिए जागरूक साहित्य वही होता है जो अपने देश और काल के भीतर से फूटता है और फूटकर देश-कालातीत हो उठता है। देशकाल से तात्पर्य है गतिशील देशकाल। देशकाल को उसकी गतिशीलता में पहचानना ही सही पहचानना होता है, क्योंकि देशकाल स्थिर नहीं रहता, उसमें निरंतर बदलाव आता रहता है। देशकाल या अपने समाज के जीवन की गतिशीलता को गहराई से पहचानना भी प्रकारान्तर से बदलाव की प्रक्रिया को तेज करना है। लेखक की संवेदनशीलता और दृष्टि की सूक्ष्मता बदलाव की आहट को शायद सबसे पहले पहचानती है, इसलिए कवि पंत जब प्रथम रश्मि कविता में बाल विहंगी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

प्रथम रश्मि का आना रंगिनि
तूने कैसे पहचाना
कहां-कहां हे बालविहंगिनि
पाया तूने यह गाना।

तो वे प्रकारान्तर से कवि द्वारा बदलाव की प्रथम किरण की पहचान की बात करते हैं। कवि यह पहचान मुखर करता है और वह सामान्य जन के भीतर इसकी चेतना भरता है। नया समाज साहित्य के अध्ययन के माध्यम से धीरे-धीरे अपनी रूढ़िबद्धता को त्यागने और नई चेतना का संस्कार बनाने की ओर अग्रसर होता है। इस बात से यह स्पष्ट है कि साहित्य अपने ढंग से समाज के बदलाव की प्रक्रिया को तीव्र करता है। लेकिन साहित्य का इस्तेमाल हथियार की तरह नहीं हो सकता। वह अपने संवेदनात्मक या रागात्मक स्वभाव के नाते समाज की संवेदना को बदलता है और साथ ही मानव मूल्यों की भी उसे चिन्ता होती है। किन्तु वह भी सिद्धान्त के स्तर पर नहीं, अनुभव और संवेदना के स्तर पर। संवेदनाओं को बदलने की प्रक्रिया भी एकदम तात्कालिक नहीं होती, वह बड़ी मन्द होती है। इस संदर्भ में एक बात और ध्यान देने को है कि वह हर बदलाव का समर्थन नहीं करता है। कई बार बदलाव बड़ा अमानवीय या असुन्दर या विघटनशील भी दिखाई पड़ता है। ऐसी अवस्था में सच्चा साहित्यकार इसकी पहचान तो उभारता है किन्तु वह कलात्मक ढंग से इसका निषेध करता है और साथ ही एक सुन्दर विकल्प की ओर संकेत भी करता है। इस प्रकार संवेदनशीलता के साथ-साथ उसका वह चिन्तन भी सक्रिय रहता

है जो संवेदनाओं को एक विशेष रूप में नियोजित करता है और उनसे एक बड़ा बिम्ब निर्मित कर उनसे एक विशेष मूल्य की ओर इशारा करता है।

जाहिर है, हमारे आधुनिक काल के आरम्भ में तेजी के साथ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में जो बदलाव आया वह साहित्य के कारण नहीं आया। लेकिन साहित्य ने उस बदलाव की पहचान कर उसे तेज किया। बदलाव को उसने नई परिस्थितियों में बदलते हुए मानवीय संवेदनों के स्तर पर पहचाना। जिस साहित्य ने बाह्य स्थितियों के बदलाव के तात्कालिक बिन्दु पर ही अपनी दृष्टि रखी, वह एक हल्के तात्कालिक प्रभाव के साथ समाप्त हो गया और जिसने नई परिस्थितियों के साहचर्य में बदलते हुए मनुष्य के भीतर की पहचान की वह आज भी अपना प्रभाव या ताव बनाए हुए है। आधुनिक काल के आरम्भ में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण नई परिस्थितियां पैदा हुई—जैसे कल-कारखाने कायम हुए और शहर और देहात के अनेक लोग उन कारखानों के सम्पर्क में आए। शुरू में ये कल कारखाने निर्जीव थे, जिनके साथ श्रमिकों का संबंध बड़ा यान्त्रिक रहा होगा। उनके लिए ये कारखाने रोजी-रोटी कमाने के मात्र साधन रहे होंगे। स्पष्ट है कि इतने से परिवर्तन की पहचान कोई गहरी पहचान नहीं है और साहित्य का क्षेत्र भी नहीं है किन्तु धीरे-धीरे कल-कारखाने और मनुष्य के बीच एक संवेदनात्मक संबंध बन गया। ये कारखाने मनुष्य के साथी लगने लगे। यानी कारखानों के प्रति मनुष्य के भीतर एक सुखात्मक या दुखात्मक संवेदना जागी। साथ ही एक नए समाज की स्थापना हुई जिसमें प्रचलित समाज के या तमाम संबंधगत, मूल्यगत यथार्थ टूटे और कुछ नए बने। सामाजिक या धार्मिक रूढ़ियों के दरकने या टूटने के अवसर उपस्थित हुए। इस प्रकार नई परिस्थितियों ने मानव-समाज के एक ऐसे भीतरी यथार्थ-जगत की रचना की जो बड़ा संश्लिष्ट था। मानव-मन और आचरण में उतरी हुई विज्ञानजन्य आधुनिकता की पहचान साहित्य ने की और वास्तव में यही उसका क्षेत्र है। हम देखते हैं कि पिछले कुछ वर्षों के साहित्य में आधुनिकता मात्र पश्चिमी फार्मूले के रूप में आई। वह आधुनिक साहित्य तो क्या साहित्य को भी निर्मित नहीं कर सकी। भारतेन्दुकाल, द्विवेदीकाल के साहित्य और विशेषतया प्रेमचन्द्र के साहित्य में आधुनिकता फार्मूले के रूप में नहीं आई, वह हमारे परिवेश के अनुभव, आचरण, सोच का अंग बन आई। इसलिए वहां अनेक सीमाओं के बावजूद आधुनिकता की आहट या आधुनिक समय में समाज के बदलाव की आहट अधिक गहरी और प्रामाणिक है। □

आर० 38, वाणी विहार, उत्तम नगर, दिल्ली-59

बुन्देलखण्ड का राई लोक–नृत्य

लक्ष्मी प्रसाद मिश्र

मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग के जिले-सागर, दमोह, जबलपुर, छतरपुर ग्वालियर, दतिया, पन्ना, टीकमगढ़ तथा उत्तर प्रदेश के दक्षिणीभाग के झांसी, ललितपुर बांदा, महोबा, हमीरपुर आदि जिले—एक विस्तृत, भू-भाग के क्षेत्र-बुन्देलखंड के अन्तर्गत आते हैं। लगभग दो करोड़ आबादी का यह विशाल भूखंड एक विशिष्ट संस्कृति का परिचायक है। इस क्षेत्र की बुंदेली भाषा बड़ी मधुर तथा मर्मस्पर्शी है। यह भू-भाग आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र की जनता अत्यधिक गरीबी की चक्की में पिस रही है। इस क्षेत्र के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण यहां उद्योगधंधों का सर्वथा अभाव है। कुछ स्थानों में लघु उद्योग प्रचलित हैं। यहां के ग्रामीण महुआ खाकर अपनी गरमी और वर्षा की रातें काटते हैं।

"राई" लोकगीत की उत्पत्ति वास्तव में "राही" अथवा "राहगीर" शब्द से हुई है 'राई'—लोकगीत तथा 'राई'—लोकनृत्य का प्रचलन भी ग्रामीण-मार्गों अथवा चौपालों के आस-पास ही देखा जाता है। ये लोक-गीत "राई" नामक लोकनृत्य के साथ ग्रीष्म-ऋतु तथा शीत-ऋतु में सुने तथा देखे जाते हैं। कहते हैं, कि भगवान राम जब चौदह वर्ष को बनवास गये थे; तो सर्वप्रथम वे इसी बुंदेलखंड के चित्रकूट नामक स्थान में ठहरे थे। और कंदमूल फलों के साथ महुआ भी उन्होंने खाया था। इसी कारण इस क्षेत्र के निवासियों के लिए महुआ जीवन-रक्षक तथा प्रिय भोजन है महुआ वृक्ष की लकड़ी ग्रामीणों के लिये बड़ी उपयोगी होती है। महुआ संबंधी लोकगीत "राई" लोक नृत्य के साथ अत्यन्त आनन्ददायक प्रतीत होता है।

महुआ, भलो राम को प्यारो!
डारें काटल, बनत मियारी; पीड़ को बनत किवारो!
और नाज मोटे महं उगजत; आपुन बसल पहारो।
गेहूं चना बगा सब दे गये; महुअन देस सम्हारो।

इस लोकगीत को जब एक ग्राम्य नृतकी (बेड़नी) बड़े उच्च स्वर, ताल और लय के साथ नृत्य अवस्था में गाती है; तो एक समां सा बंध जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आया है। शीत ऋतु में, चांदनी रातों में "राई"—लोक नृत्य देखने योग्य रहता है। कड़कड़ाती सरदी में लोग कम्बल और रजाई—ओढ़े-ग्राम्य-नर्तकी का नृत्य बड़े लालायित नेत्रों से एकटक देखते रहते हैं। इसके पश्चात् पुनः उसे

नृत्य करने को विवश किया जाता है। ग्राम्य नर्तकी पुनः अपना बाघरा छुटका नृत्य करने लगती है। महुआ संबंधी लोकगीत में जहां "देश संहालने" की बात कही गई है—वहां वह राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत-प्रोत एवं प्रतिध्वनित है। राई नृत्य में चारों ओर मशालों के प्रकाश में चन्द्रमुखी ग्राम्यनर्तकी के साथ अनेक वाद्य-यंत्र स्वर, ताल एवं लय के साथ बज उठते हैं। ढोलकी-वादक नर्तकी के चारों ओर संगीत की मधुर स्वर लहरी में गीत गाता हुआ नृत्य करता एवं ढोलक बजाता है। ग्राम्य नर्तकी एक गोल घेरे में नृत्य करती है। टिमकी या नगड़िया-वादक अपने दोनों हाथों में छोटे-छोटे डंडे लेकर जोर जोर से टिमकी बजाता है। तत्पश्चात् ढोल की 'धमक' तथा पखावज की 'थाप' पर नर्तकी के पैर घुंघुरुओं की 'छनछनाहट' में बरबस थिरक उठते हैं। और वह नृत्य करती हुई दर्शकों का मन मोह लेती है। ग्रामीण जन नर्तकी को इस समय प्रसन्नता से रुपये-पैसे आदि देकर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। इसी समय मंजीर की 'खनखनाहट' और झांझों की 'झपताल' एक अनोखा समां बांध देती है। 'राई'—नृत्य वास्तव में ग्रामीण जनता के मनोरंजन का एक सुंदर साधन है। शहरी बाबू भी कभी-कभी 'राई नृत्य' का आनन्द लेते देखे गये हैं। आजकल ग्रामीण क्षेत्रों में भी भ्रष्टाचार अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गया है। बुन्देलखंड के ग्रामीण—अंचलों में किस प्रकार शोषण तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला है—इसका चित्रण निम्न लोकगीत में प्रदर्शित है। ग्राम्यनर्तकी संसार के मिथ्याडम्बर तथा शोषण के विरुद्ध एक मीठी चुटकी लेकर गाती है।

भैया, सब ऐंसई डांके डारें !
गुनिया, वैद्य सबई जुरि आये; ओखद बुटी संवारें !
पहले रुपया लेयं सगुन को, पाछें नबज निहारें !!
बनिया महाजन बैठ तखत पै; कागद बही सम्हारें !
देवें रुपया लिखे सवाये-दूने, ढेवढ़े गावें !!
हाकिम-सूबा बिच पै बैठे-दुनिया, देस उजारें !
बिना जुलम के पकर बुलावें; डांड लेयं, फिर छाड़े !!
वैद्य, गुनी अर पंडिता दुनिया को ठग डारें !
उबे-सूबे तिलक लगावें; गठरन माला टारें !!
झूटी-सांचो बात बनाके; बिरथा धरम नसावें !
तुलसीदास आस रघुवर की; कुंभी नरक में जावें !!

बुन्देलखंड की ग्रामीण जनता आज भी वैद्य, गुनिया, महाजन तथा अधिकारी-वर्ग के चंगुल में फंसकर त्रसित हो रही है—इसी भ्रष्टाचार की चरम-सीमा का चित्रण उक्त गीत में परिलक्षित हो रहा है। ग्रामीणों का ऐसा विश्वास है, कि अन्याय तथा अत्याचार करने वाले लोगों को मृत्यु के पश्चात यमराज कुंभीपाक नरक में ले जाकर नाना प्रकार के कष्ट देते हैं और सदाचारी व्यक्तियों के लिये स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। बुंदेलखंड के ग्रामीणों की यह धार्मिक आस्था है, जिसे वे "राई" लोक-गीतों के द्वारा व्यक्त करते हैं। "राई"—लोक-नृत्य बुन्देलखंड की जनता का एक स्वस्थ मनोरंजन है। "राई' लोक-गीतों में 'स्वांग' या 'ख्याल' नामक लोकगीत भी गेय हैं—जो कभी-कभी मानव-मन की गंभीर तथा रहस्योन्मुखी वृत्तियों का चित्रण करते हैं। एक ख्याल में—"घूंघट तोरी ओट हमने राम जी देखे"—वाली पंक्ति में रहस्योन्मुखी भावना निहित है इसी प्रकार "रथ फेरो द्वारका वारे लला"—के ख्याल में श्रीकृष्ण के अवतार की पुनः कल्पना की गई है, जो मानव-मन को शान्ति प्रदान करती है। □

—तिलक गंजवार्ड, सागर (म० प्र०)

(पृष्ठ 29 का शेष)

'तो तू किसके साथ चलती है ?'

'...माला...भाभी के साथ।'

'तडांडडक् ।'

लच्छू हिच्च बोल गई। उसने सहमते हुए कहा था कि गुलजार दादा उबल पड़े थे।

—"खबरदार जो कभी इसके साथ गई...कुलच्छिनी... अठारा जिले की भगोड़ी औरत...इसकी दोस्ती की तो सुन लेना—रील कर रख दूंगा...'

लाल पीली आंखे तरेरते हुए गुलजार दादा अपने घर में घुस गये थे कुछ भुनभुनाते हुए...

'...कुजात ससुरी...अभी नहीं आई...बशिरवा से चौरा कर रही होगी...लछुवा को साथ में रखेगी तो मनुस कहां ढूढेगी नककटी...हरामजादी दिन-दिन भर घर नहीं आती... परी चमरौटी कहती है...रिश्तेदार कहते हैं कि...।'

लच्छू अपना सूजा हुआ गाल पकड़े कुछ बिसूरती रही। घर के भीतर अठारा जिले की भगोड़ को बड़जिया घोड़े के से लात पड़ गये वह आंधी सी धूल, पत्ते, घास, कागज लत्ते और कूड़ा लेकर उड़ चली—

"हां...बड़ा आया भला मानुस...सठिया गया...शरम नहीं आई...औरत मर गई थी तो लड़की का ख्याल नहीं किया... नई औरत रख कर धरमराज बन गया...उसी के साथ तो चलने लायक है लछुवा...गुनवंती के...हूं...कित्ता शरीफ बाना घर लेते हैं लोग कि..."

लच्छू किसी बवंडर में बार-बार पटकने खा रही थी। गुलजार दादा कुछ देर बाद बाहर निकले थे। कुछ जली-कटी बातें सुनकर पूछा था—

'क्या है रे लछुवा ? क्या बक रही हैं वह ऐ ?...बोलना क्या भिनभिना रही है...?'

लच्छू गलियारे में खड़ी थी। कोई उसकी आंतें, दिमाग, आंखे नोंच रहा था...कोई उसका गोश्त खरोंच रहा था... ...उसकी खोपड़ी, गर्दन, पसलियां, टांगें कोई घसीट रहा था... कोई उसकी ठठरी पर परा रहा था...कोई उसके हाड़ बांध रहा था...कोई वहीं घोसला बनाने की सोच रहा था...कोई वहीं लगातार चक्कर लगा रहा था...

'बता क्या बक रही है तेरी भाभी ?' गुलजार दादा ने नजदीक आते हुए पूछा था।

'कुछ नहीं।'

एक लम्बी सांस के बाद लच्छू के होंठ खुले थे।

—मानिकपुर, बांदा 210208

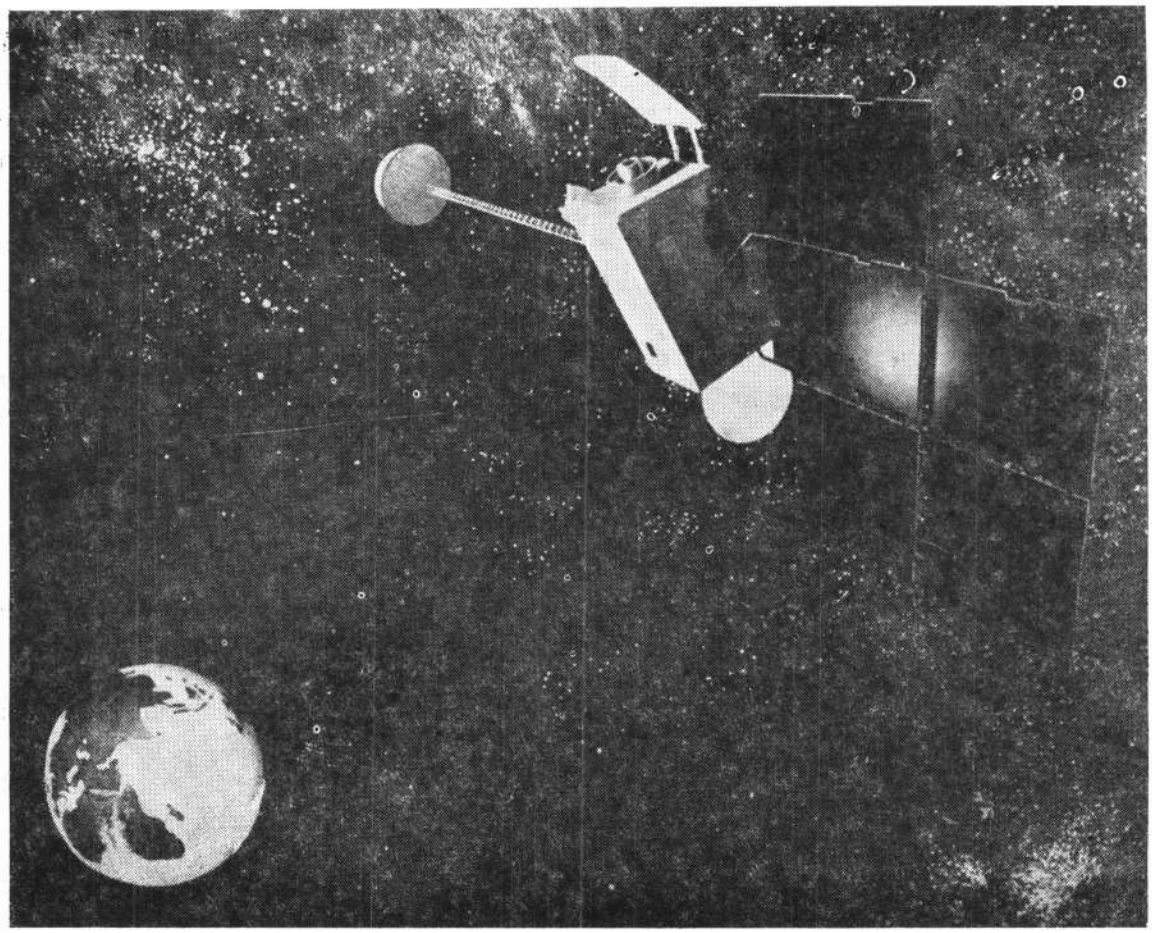

अंतरिक्ष में युगांतर

★ वेद प्रकाश अरोड़ा

1975 में पहले भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट को छोड़ने से लेकर आज के जटिल बहु-प्रयोजनीय इन्सेट 1-बी के प्रक्षेपण तक भारत ने अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में एक लम्बा सफर तय किया है। ऊंच-नीच, सफलताओं-विफलताओं वाले तथा सपाट एवं ऊबड़-खाबड़ इस मार्ग को पार कर आज भारत जिस जिगह पर जा पहुंचा है, उससे उसकी प्रतिष्ठा को चार चांद लग गए हैं। भारत ने इन्सेट एक-बी के सफल प्रक्षेपण और पृथ्वी की स्थैतिक कक्षा में उसके सफल स्थापन से अंतरिक्ष में एक युगांतकारी घटना कर दिखाई है तथा अंतरिक्ष उपग्रह के इतिहास में नया आयाम जोड़ा है।

30 अगस्त 1983 को अमरीका की घुप अंधेरी रात और इधर भारत में दिन के उजाले में दो देशों का मिश्रित गंगा-जमुनी अंतरिक्ष इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। अमरीका के केपकेनबरल अंतरिक्ष उड्डयन केन्द्र से सन्नाटे को चीरता हुआ तथा चमकदार रोशनी व गरज के साथ 100 टन वजनी अमरीकी शटल यान चैलेंजर भारत के 1193 किलोग्राम वजनी उपग्रह इन्सेट एक-बी को अपनी गोद में उठाकर अंतरिक्ष यात्रा पर रवाना हुआ। आकाश में नीचे आये बादलों के छंटने के इंतजार में चैलेंजर निर्धारित समय से सत्रह मिनट बाद अपनी मंजिल के लिये रवाना हो सका। नारंगी, लाल और सफेद रंग की यह रोशनी सूर्य की रोशनी से भी दुगनी थी। उसे मीलों दूर देखा जा सकता था।

भारत के बेजोड़ बहुपयोगी कृत्रिम उपग्रह इन्सेट एक-बी अपनी आकाशीय कक्षा के नीड में पहुंच कर अपने सभी यांत्रिक अवयवों के साथ एक आज्ञाकारी पुत्र, निष्ठावान सेवक तथा अंतरंग सहयोगी की तरह भारतवासियों की जी-जान से सेवा सहायता कर रहा है।

लेकिन 6 मंजिली इमारत की ऊंचाई वाले इस उपग्रह को अपनी आखिरी मंजिल तक पहुंचने के लिये रास्ते की अनेक अकल्पनीय, अकथनीय कठिनाइयों से जूझना पड़ा। वह एक-एक कर इन सभी दिक्कतों को पार करता गया और सभी परीक्षणों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करता गया।

यह ठीक है कि अमरीकी शटल यान से छोड़े जाने के अगले दिन दोपहर बाद पृथ्वी की कक्षा में स्थापित हो गया लेकिन इस त्रिखण्डीय उपग्रह की पांच पट्टियों वाली सौर-ऊर्जा प्रणाली जो उपग्रह की ऊर्जा की मुख्य स्रोत है, जाम हो गई थी। यह उपग्रह के पश्चिमी छोर पर अटक गई थी। तय किया गया कि विभिन्न यंत्रों में विभिन्न प्रकार से जोड़ और तालमेल बैठाकर उपग्रह के मुख्य ढांचे को हल्के झटके दिये जाएं, जिससे संभवतः सौर पट्टियां खुल जाएं। लेकिन सौर ऊर्जा प्रणाली की पट्टियों को झटके देने की नौबत ही नहीं आती। सात दिन के प्रयत्नों के बाद जब इन पट्टियों को सूरज के सामने लाकर कोई एक घन्टे से कुछ अधिक समय तक गरमाया-तपाया जा रहा था तो ये अचानक खुल गईं।

इनके खुलते ही परियोजना का आगे का सारा रास्ता भी खुल गया। सूरज की गर्मी से ये सौर-पट्टियां उसके सामने वैसे ही बिल्कुल सीधी-सपाट खड़ी हो गईं जैसे किसी सपेरे की बीन सुनकर सांप टोकरी से 90 डिग्री का कोण बनाकर खड़ा हो जाता है। सूर्य की रश्मियों ने जादू का असर किया और इन्सेट में प्राण फूंक दिये। एक सप्ताह के विलम्ब के बावजूद वैज्ञानिकों में अपार हर्ष की जबरदस्त लहर फैल गई और वे दुश्चिंताओं से मुक्त हो गए।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जब ये सौर-पट्टियां खुली नहीं थीं, नासा की एक वीडियो फिल्म ने तहलका मचा दिया था। फिल्म से पता चला कि जब उपग्रह शटल से अलग हुआ तो कोई 23वें सैकेंड में उसके मात्र 50 फुट दूर होने पर आठ इंच आकार की एक रहस्यमयी वस्तु उसके ऊपरी हिस्से से टकरा गई थी। इससे यह डर समा गया था कि उपग्रह की सौर-पट्टियां सूरज के सामने शायद इस वस्तु के आघात के कारण पूरी तरह खुल न पाएं।

बहरहाल सौर-पट्टियों के खुलने के बाद आगे के पड़ाव लांघने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। सी/एस बैंड एंटीना ने जो संचार तथा दूरदर्शन कार्यक्रमों के लिये हासन केन्द्र के संकेतों पर खुलने में देर नहीं लगाई। लेकिन सूरज की गर्मी को बिजली में बदलने वाले तथा कक्षा में उपग्रह का सन्तुलन कायम रखने वाले सौर-पाल के न खुलने से फिर चिंताओं ने घेर लिया था। पर दो दिन के प्रयत्नों के बाद 12.65 मीटर ऊंची छतरीनुमा यह पाल खोलकर, उपग्रह को, भूमध्य सागर के ऊपर 74 देशान्तर पूर्व में पृथ्वी की समकालिक तथा भू-स्थिर कक्षा में पहुंचा दिया था।

इन्सेट 1-ए की त्रुटियां दूर की गईं

इस बार इन्सेट एक-बी में उन सभी कमियों, खामियों और अड़चनों को दूर करने का प्रयास किया गया है जो इसके पूर्वगामी इन्सेट एक-ए में रह गये थे। प्रणोदकों को कई बार दागने के बावजूद इन्सेट एक-ए का सौर पाल खुल नहीं पाया था और इस चक्कर में ईंधन भी समाप्त हो गया था। इस मामले में एक दूसरी समस्या यह उत्पन्न हुई कि सौर पाल खुला है या नहीं, इसने काम शुरू किया है या नहीं —इस सबकी सूचना देने के लिए जो सूक्ष्म स्विच अर्थात् माइक्रोस्विच लगाया गया था— उसने ही काम नहीं किया। नये उपग्रह में यह सूक्ष्म स्विच हटा दिया गया और सूचना देने की सीधी विश्वसनीय प्रणाली खोज निकाली गई। सौरपाल की मोटर में संशोधन के साथ-साथ सी-एच० बैंड रिफलैक्टर यानी परावर्तक में भी यांत्रिक परिवर्तन किये गये हैं। इसके अतिरिक्त दूरी मापक यन्त्र तथा उपग्रह के स्वास्थ्य की सूचना देने वाले टैलीमीटर की प्रणाली में भी कुछ फेरबदल की गई है। नये उपग्रह में अधिक ऊर्जा की टैलीमीटरी तथा कम ऊर्जा की टैलीमीटरी दोनों का उपयोग किया गया है। ऊंचाई की सर्किट तथा कक्षा नियंत्रण प्रणालियों और उपकरण चालन के तंत्र में भी संशोधन किए गए। प्रत्येक दृष्टि से उपग्रह 1-बी को त्रुटिहीन बनाने का और यदि इसके बावजूद कोई अड़चन उत्पन्न हो जाए तो उसे दूर करने का भरपूर प्रयास किया गया।

कई दृष्टियों से पहला

इन्सेट एक-बी ने कई राहें दिखाई हैं, कई रास्ते खोले हैं और कई आयाम जोड़े हैं। विकसित देशों ने जो उपग्रह बनाये हैं वे एक ही कार्य, एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए गए हैं। या तो वे मौसम सम्बन्धी सूचनाएं प्रदान करते हैं या मात्र दूरदर्शन के कार्यक्रमों का प्रसारण करने हैं, या फिर दूरभाष की सारणी का काम देते हैं। अगर कोई उपग्रह जासूसी के लिये बनाया गया है तो वह अपनी गतिविधियां जासूसी कार्यों के लिये ही सीमित रखता है। लेकिन इन्सेट एक-बी एक बहुकर्मी उपग्रह है, हां इसके ये कार्य रचनात्मक और सुधारात्मक होंगे। इसके कार्यों की त्रिमूर्ति हैं -दूर संचार, दूर दर्शन-प्रसारण और मौसमी आंकड़ों का प्रेषण।

यहां यह उल्लेखनीय है कि शुरू में जब पांच पट्टियों वाली सौर-ऊर्जा प्रणाली ने काम नहीं किया तो कुछ वैज्ञानिकों ने 'एक में तीन' उपग्रह छोड़ने की बुद्धिमत्ता को दबी आवाज में चुनौती देनी शुरू कर दी थी। उनका तर्क था कि 'एक में एक' का गुर अपनाया जाना चाहिए। जब अंतरिक्ष एवं उपग्रह प्रौद्योगिकी में उन्नत से उन्नत राष्ट्र एक प्रयोजन के लिए एक उपग्रह, दूसरे प्रयोजन के लिये दूसरा उपग्रह तथा तीसरे प्रयोजन के लिये तीसरा उपग्रह छोड़ते हैं तथा उसमें उन्हें सफलता हो सफलता मिलती है तो हम भी क्यों न यही पद्धति अपनाएं। अगर एक उपग्रह को एक साथ इतने काम सौंप देंगे उस पर इतना बोझ लाद देंगे तो वह बेचारा यह सब कैसे बर्दाश्त करेगा। कोई बड़ी बात नहीं कि अगर इन्सेट एक-बी भी, एसेन्ट एक-ए

की भांति लंगड़ा लूला हो जाता तो 'वन इन वन' अर्थात एक में एक के परीक्षण को प्राथमिकता दी जाती। लेकिन हमारा कृतज्ञ राष्ट्र भारतीय वैज्ञानिकों के तकनीकी कौशल, अपूर्व धीरज, उन्नत एवं संतुलित प्रौद्योगिक ज्ञान, बज्र संकल्प और टीम-भावना को सदा मीठी यादों के साथ संजोए रखेगा। इस जैसे अंतरिक्षीय नाजुक परीक्षणों में दिक्कतों पर दिक्कतों का सामना करना ही पड़ता है।

भारत ने इससे पहले आठ उपग्रह राकेटों से भेजे, लेकिन यह पहला अवसर था कि यह नौवा उपग्रह शटल-यान चैलेंजर से भेजा गया और इस पर व्यय भी कम हुआ। पिछले वर्ष कृत्रिम उपग्रह इन्सेट एक-ए को राकेट से भेजने में 26 करोड़ रुपये खर्च हुए थे लेकिन वर्तमान कृत्रिम उपग्रह इन्सेट एक-बी चैलेंजर से भेजने में केवल 13 करोड़ रुपए अर्थात् आधी रकम देनी पड़ी है।

जिस बहुकर्मी शटल यान से भारतीय उपग्रह भेजा गया उसके पांच अमरीकियों में कमान्डर और पायलट के अलावा तीन मिशन विशेषज्ञ भी थे। इन विशेषज्ञों में पहली बार एक अश्वेत अंतरिक्ष यात्री गुहयों ब्लियू फोर्ड भी थे जिन्होंने भारतीय उपग्रह को गोदाम खण्ड की खिड़की खोलकर अंतरिक्ष में छोड़ा। इन विशेषज्ञों में डा० विलियम थोर्नटन भी थे, जो अंतरिक्ष में अब तक गए व्यक्तियों में सबसे अधिक आयु अर्थात 54 वर्ष के थे। साथ ही इसमें एक अन्य विशेषज्ञ 34 वर्षीय डेल गार्डनर सबसे कम आयु के अंतरिक्ष यात्री थे। यह पहला मौका था कि कोई उपग्रह रात में छोड़ा गया।

पूर्ववर्ती इन्सेट की भांति इन्सेट एक-बी का रूपांकन भारतीय वज्ञानिकों ने किया तथा इसका जो अभिरेखण और विशिष्ट अमरीका की फर्म कोर्ड एयरोस्पेश एण्ड कम्युनिकेशंस कारपोरेशन को दी, उसी के अनुरूप यह इन्सेट तैयार किया गया। सामान्य परिस्थितियों में इसका जीवन काल कम से कम सात वर्ष रहेगा। कहने को यह इन्सेट एक-ए के पूरक के रूप में छोड़ा जाना था लेकिन इन्सेट एक-ए बेकार हो जाने के कारण अब यह मुख्य उपग्रह का काम करेगा। बाद में छोड़े जाने वाला इन्सेट एक-सी इसका पूरक बन जायेगा।

लाभ :

इन्सेट ने देश को विकास की नई भूमि, नये धरातल पर ला खड़ा किया है। कोई दो दशकों के निरन्तर प्रयासों के बाद हम अंतरिक्ष तकनीक का जन-जन के लाभ के लिये, उपयोग करने में सक्षम हुए हैं। उपग्रह को अंतरिक्ष चितेरा, दूर संचार एक्सचेंज, सन्देश वाहक, प्रसारक एवं आकाशीय शिक्षक आदि जो अनेक नाम दिये गये हैं वे क्रमश: उसके मौसम, तार-टेलीफोन दूरदर्शन और रेडियो सम्बन्धी कार्यों को व्यक्त करते हैं। इन्सान की भांति यह आंख, कान और मुंह से काम लेकर मानव-यंत्र का स्थान लेगा। यह पृथ्वी के तिहाई भाग पर नजर रखेगा। उपग्रह का एंटीना चौबीसों घण्टे पृथ्वी से आंख मिलाए रखेगा, हालांकि इस तीन अक्षीय स्थिर उपग्रह का पूरा शरीर अपने में चक्कर खाता रहेगा। जहां तक मौसम सम्बन्धी सूचना देने का प्रश्न है, इन्सेट में लगे कैमरों और दूसरे उपकरणों की सहायता से प्रत्येक आध घन्टे में चित्र प्राप्त किये जाएंगे। समुद्री तूफान, आंधी, बादलों और बर्फ के पिघलने आदि की सूचना अब जितने समय में मिलती है, उससे भी 12 से 24 घन्टे पहले मिल जाया करेगी। इससे बाढ़नियंत्रण, सिंचाई, वैमानिकी, तेल की खुदाई आदि कार्यों में भी ठोस सहयोग मिलेगा।

दूर संचार कार्यों में अब पहाड़, नदी नाले ऊबड़-खाबड़ जमीन तथा बादल कोई बाधा उपस्थित नहीं कर सकेंगे। दूर दराज के और दुर्गम स्थानों से सीधा सम्पर्क दो तरफा आठ हजार टेलीफोन सर्केटों से जुड़ जायेगा। इससे आवाज भी साफ-सुथरी सुनाई देगी और लागत तो कम आयेगी ही। यह प्रणाली कम से कम 35 भू-उपग्रह केन्द्रों से जुड़ी होगी। इनमें भी दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और शिलांग सबसे बड़े केन्द्र होंगे। इससे बैंकों के हिसाब-किताब में भी मदद मिलेगी। उपग्रह से सी/एस बैंड एंटीना और 12 ट्रांसपोंडर लगे हैं। ट्रांस-पोंडर एक ऐसा यंत्र है जो पृथ्वी के एक तरफ से सन्देश लेकर दूसरी तरफ फिर पृथ्वी को वापस भेज देता है। इनमें से एक ट्रांसपोंडर मौमम की सूचना देने के लिये, दो ट्रांसपोंडर दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के कार्यक्रमों के सीधे प्रसारण के लिये तथा अन्य संचार कार्यों के लिये हैं। उपग्रह से सीधी दूरदर्शन सेवा से ग्रामीण क्षेत्रों में एक लाख टी० वी० सैटों के पर्दे पर उनकी रुचि के विशेष कार्यक्रम दिखाये जाएंगे। इनमें अधिकतर कार्यक्रम सामाजिक एवं कृषि विषयों पर आधारित होंगे। साथ ही इन दूर-दर्शन कार्यक्रमों से साक्षरता का अभियान भी चलाया जायेगा।

इस तरह उपग्रह कार्यक्रम पर लगाई गई राशि के लाभ, उससे कहीं अधिक तथा कई गुना होंगे। इस पर लगाया गया हर रुपया प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में कई रुपयों का लाभ पहुंचायेगा। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के शब्दों में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का उद्देश्य भारत की मुख्य समस्याओं का समाधान करना है, न कि इस मद में धनराशि व्यय कर उसे बर्बाद करना है। अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यों पर व्यय, बच्चे की शिक्षा पर खर्च के समान है, जिसका सुफल बाद में दृष्टिगोचर होता है। □

268, सत्य निकेतन, मोतीबाग,
नई दिल्ली-110001

राम-रावण संघर्ष

भौतिकवाद पर अध्यात्मवाद की विजय

डा० उषा बाला

दीपावली मनाने की प्रथा का कब और कैसे सूत्रपात हुआ, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह प्रवृत्ति किसी सभ्यता विशेष के विकास के बाद शुरू हुई। जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बाली द्वीपों में बड़े पुरातन हिन्दू मन्दिर हैं और वहां के मूल निवासियों में भी किसी न किसी प्रकार दीपावली मनाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ र है।

दीपावली प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। एक कथा यह है कि भगवान श्री कृष्ण ने इसी दिन नरकासुर दैत्य का संहार करके मानव समाज को उसके उत्पीड़न से मुक्त किया था और जिस पर प्रसन्नता की अभिव्यक्ति दीपावली द्वारा की जाती है। दूसरी कथा दैत्यराज की है जिसने तपस्या द्वारा भगवान विष्णु का पद प्राप्त करने का हठ ठाना था। इसी कारण उसे विष्णु ने पाताल लोक भेज दिया था। तीसरी कथा रामायण से सम्बन्धित है। कहते हैं, इसी दिन भगवान राम लंका के बलशाली राजा रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटे थे। इसी उपलक्ष्य में अयोध्यावासियों ने नगर को सजा कर दीपावली मनाई थी।

भगवान राम और अतुलित बलशाली रावण का युद्ध वास्तव में दो विपरीत आदर्शों का संघर्ष था। रावण भौतिकता का पुजारी था। बाल्मीकि के अनुसार वह विद्वान, ज्ञानी व चारों वेदों का ज्ञाता था। उसके दस सिर होने का यही अर्थ हो सकता है कि वह चारों वेदों और छहों शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित था। लंका उस युग में सबसे अधिक उन्नत राज्य था। सोने की लंका का तात्पर्य केवल यह है कि वह सब प्रकार धनधान्य से पूर्ण तथा विज्ञान और कलाकौशल की दृष्टि से समृद्ध थी। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

"उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती' —इससे पता चलता है कि रावण भी आर्य ऋषियों की सन्तान था। जिसने लंका में जाकर एक फले-फूले साम्राज्य की स्थापना की थी।

विज्ञान और कला-कौशल की उन्नति की दृष्टि से रावण की तुलना में उस समय के अन्य राज्य कुछ भी नहीं थे। रावण का 'पुष्पक' विमान इसका प्रमाण है। रावण के प्रताप का वर्णन करते हुए रामायण में कहा गया है कि उसके डर के मारे हवा भी मन्दगति से चलती थी। ग्रीष्म ऋतु और शरद् ऋतु दोनों उसके वश में थी, वह जब चाहे मौसम में परिवर्तन कर लेता था। चम्पू रामायण में तो इसका बड़ा ही विशद वर्णन है कि रावण ने किस प्रकार प्रकृति को वश में कर रखा था। आज विज्ञान एवं भौतिकवाद का सारा लक्ष्य प्रकृति को अपने वश में करना ही तो है। रावण ने छहों ऋतुएं वश में कर रखी थीं। यही नहीं, भवनों, सड़कों आदि की अच्छी व्यवस्था के कारण बड़े-बड़े आधुनिक नगर भी लंका नगरी के आगे टिक नहीं सकते थे।

लंकावासी भी अपने राजा की भांति भौतिकता के पुजारी थे, आमोद-प्रमोद के प्रेमी थे। जब हनुमान, सीताजी की खोज में लंका नगरी पहुंचे तो उस समय दिन का समय था। इस कारण से कि लोग उन्हें पहचान न लें, वह रात होने पर ही बाहर निकले। लंका नगरी एक पर्वत पर थी जिसके चारों ओर ऊंची-ऊंची दीवारें थीं, चौड़ी-चौड़ी सड़कें और भव्य महल थे। हनुमान आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने देखा बड़े-बड़े द्वार नगर के चारों ओर बने हैं, जिनकी रक्षा के लिए मस्त हाथी तैनात हैं। महलों व भव्य भवनों के द्वार सुवर्ण के हैं जो सड़कों की ओर खुलते हैं। दीवारों पर अनमोल रत्न जड़े हैं, संगमरमर के फर्श हैं। घर-घर में मधुर संगीत की ध्वनि गूंज रही है, जिन्हें अद्वितीय सुन्दरियां गा रही हैं। नृत्य की झंकार से सारा वातावरण गूंज रहा है। सारी नगरी आमोद-प्रमोद में डूबी हुई थी जिसकी आज के किसी भी आधुनिक महानगर से तुलना की जा सकती है।

दूसरी ओर उच्च चरित्र एवं पवित्रतम जीवन के जिन आलौकिक गुणों की मनुष्य कल्पना कर सकता है, वे सब भगवान राम में मिलते हैं। राम के चरित्र की एक-एक घटना उनके पौरुष का आदर्श उपस्थित करती है। राम के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बात जो हमें पग-पग पर आकर्षित करती है, वह है उनकी विनयशीलता। महाबलशाली रावण की शक्ति का नाश करके भी भगवान राम में अपनी विजय पर तनिक भी अहंकार की भावना नहीं आई। अयोध्या लौटकर सुग्रीव, हनुमान, नल, नील तथा अंगद आदि को महर्षि वशिष्ठ के सम्मुख 'पद लागहु' के लिए प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

"गुरु वशिष्ठ कुल पूज्य हमारे,
इनकी कृपा दनुज दल मारे।
ये सब सखा सुनिय मुनि मेरे,
भये समर सागर कहं बेरे।"

विनय की मूर्ति भगवान राम के ये शब्द, कि इन्हीं की कृपा से हमने रण में राक्षसों का बध किया है, उनकी विनम्रता को ही उजागर करते हैं। वे सुग्रीव, हनुमान आदि सभी वानरों को अपना सखा कहकर सम्बोधित करते हैं। विजयी सम्राट का अपने अनुयायियों के प्रति यह व्यवहार विश्व में अन्य कहां देखने को मिल सकता है।

भगवान राम के लौटने का समाचार पाकर भरत सहित सारे अयोध्यावासी उनका स्वागत करने आगे बढ़कर गये। इतने वर्ष बाद कोई भी व्यक्ति अपने परिजनों से मिलता, परन्तु राम तो अलौकिक पुरुष थे, अयोध्या पहुंचते ही उन्होंने ऋषियों, विद्वानों और ब्राह्मणों का चरणवन्दन कर आशीर्वाद ग्रहण किया। सुवर्ण नगरी उनके मनोबल को डगमगा नहीं सकी। विजय प्राप्त कर तुरन्त विभीषण को राज सौंप विमान पर बैठ गए और कहा—

"तुम्हरे बल मैं रावण मारा"

राम-परशुराम संवाद में तो भगवान राम ने विनय, धैर्य और शील का जो आदर्श उपस्थित किया है वैसा दूसरा उदाहरण लोक-लोकान्तर में कभी देखने को नहीं मिल सकता।

दैनिक जीवन में उपस्थित होने वाली प्रत्येक समस्या को भगवान राम ने जिस प्रकार सुलझाया है उसे परम आदर्श कहा जा सकता है। यही कारण है कि लाखों वर्षों के बीत जाने पर भी आज करोड़ों नर-नारी राम नवमी और दीपावली के पवित्र पर्व को मनाते हैं।

राम-रावण संघर्ष

राम रावण के चरित्रों का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राम-रावण युद्ध वास्तव में अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का ही संघर्ष था। रावण भौतिकवादी था, उसका विश्वास था कि केवल संध्या-पूजा करने, यज्ञ की अग्नि में 'स्वाहा-स्वाह' करने तथा दान-दक्षिणा आदि से मानव समाज का कल्याण नहीं हो सकता। आचार-विचार और खान-पान के नियमों को वह व्यर्थ का ढोंग समझता था। यज्ञ, तप आदि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करना उसकी दृष्टि में स्वार्थ की चरम सीमा थी। अपने विचारों के प्रसार के लिए उसने शान्तिमय प्रचार के उपाय को काम में लाने की बजाय बल और हिंसा का प्रयोग किया। उसके राक्षस ऋषियों के यज्ञ ध्वंस कर देते थे। मांस-मदिरा आदि का खूब सेवन करते थे तथा आचार-विचार में स्वच्छन्दता से काम लेते थे। इसीलिए वे राक्षस कहलाते थे।

दूसरी ओर उस काल के राजा आध्यात्मिकता के पुजारी थे। वे धर्म व नीति से प्रजा का पालन करते थे, ऋषि-मुनियों की सेवा करते थे और इन सभी कार्यों को वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। महाराज दशरथ के पितामह महाप्रतापी 'रघु' सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से एक ऋषि की गाय चराते थे। महाराज दशरथ ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा हेतु अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्रों को वन में भेज दिया था। राम-राज्य में न कोई चोर था, न कोई दुःखी, न व्यभिचारी न मदिरापान करने वाला और न अनपढ़।

अध्यात्मवाद में इस लोक में शान्ति और सन्तोष के साथ परलोक में सुख की कल्पना रहती है, परन्तु भौतिकवाद विभिन्न प्रकार की सांसारिक उन्नति, दूसरों पर शासन तथा संगठन में विश्वास रखता है। वस्तुतः रावण को भौतिकवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। भारत आदिकाल से ही अध्यात्मवाद का पुजारी रहा है। इसी दृष्टि से भौतिकवादी रावण पर राम की विजय को भौतिकता पर अध्यात्म की विजय कहा जा सकता है। □

एफ-48, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-16

लघुकथा

दिनेश भट्ट 'दिवाकर'

दंगाई

अंधेरी स्याह सड़क पर तीन आकृतियां उभरीं। चारों ओर नजरें घुमाकर फिर वे आपस में फुसफुसाने लगीं।

"क्यों रे! तेरे मुहल्ले में आज कोई 'फसाद' नहीं हुआ?" पहला बोला, "पुलिस जो गश्त लगा रही थी वरना आज तो साले आपस में कट मरते।" दूसरा फुसफुसाया।

"क्या बताऊं, एक डायनेमाइट मन्दिर के पास रख आया था, तीन ही काफिर मरे।" तीसरा बड़बड़ाया।

इतने में एक 'जीप' के आने की आवाज आई, देखकर तीनों हड़बड़ाये—

'पुलिस...'

'जल्दी करो और यह लो, आज तबाह कर डालना—अपने अपने मुहल्ले को...।

हड़बड़ाहट में दूसरे के हाथ से 'बम' गिर पड़ा और एक धमाके के साथ तीनों वहीं ढेर हो गये। दूसरे दिन से शहर में दंगे-फसाद बंद हो गये। लाश-शनाख्त की गई तो उसमें एक हिन्दू, एक मुस्लिम तथा एक सिक्ख था...।

—द्वारा 'आधार सिला' मासिक
इन्दिरा नगर, इज्जत नगर, बरेली
पिन-243122 (उ० प्र०)

पुस्तक समीक्षा

दो उपन्यास—दो रंग

1. चेहरों का आदमी : लेखक : रामदेव धुरंधर : समानांतर प्रकाशन : पृष्ठ सं० : 177, मूल्य : पच्चीस रुपये ।
2. कथा अनन्ता : लेखिका : क्रान्ति त्रिवेदी, समानांतर प्रकाशन, पृ० सं० : 212, मूल्य : तीस रुपये ।

क्रान्ति त्रिवेदी की कथा—अनन्ता जहां उपन्यासों, कहानियों में ही घटने वाली किसी घटना जैसी लगती है वहीं रामदेव धुरंधर की 'चेहरों का आदमी' अपने आप में बहुत सफल कृति न होते हुए भी यथार्थ के नजदीक बने रहने की कोशिश करती है ।

'चेहरों का आदमी' के केन्द्रीय पात्र दो मित्र हैं, किन्तु मुख्यत: ये कहानी एक अन्य पात्र राउत और उसकी राजनीतिक पैंतरेबाजी के आसपास घूमती है । राउत एक दलाल है । वह लोगों को आश्वासनों की मरीचिका में उलझा कर कैसे चुनावों में मत झपटने की भूमिका तैयार करता है, इसका अच्छा वर्णन उसके माध्यम से किया गया है । कथानायक राजशेखर चार साल की जेल काट कर बाहर निकलता है । उसे याद आते हैं वो दिन जब उसे सजा हुई थी । सजा के कारण का पाठक अन्दाजा कर ले किन्तु नीलम के साथ उसका वार्तालाप अन्त तक स्पष्ट नहीं हो पाता । कहानी में प्रवाह की कमी महसूस होती है । रूमा जैसे पात्र को प्रस्तुत करने का क्या उद्देश्य था ? शुरू में यह कृति एक मामूली प्रेम कहानी महसूस होती है । किन्तु अपराह्न तक पहुंचते-पहुंचते आसार बदल जाते हैं और राजनीतिक पृष्ठभूमि के बीच चरित्रों का विस्तार तथा मानवी संवेदनाओं का चित्रण उभरता है । किन्तु खोजने पर भी कहानी का उद्देश्य हाथ नहीं लगता ?

क्रान्ति त्रिवेदी की 'कथा अनन्ता' कल्पना में विचरने वाले किशोर पाठकों के लिए एक दिलचस्प कहानी साबित होती है । मुख्य पात्र जहानवी राय है तथा उसी के इर्द गिर्द पूरी कहानी का ताना बाना बुना गया है । तीन पुरुष उसके जीवन में आते हैं । जिनमें से उपर्युक्त चुनाव उसके लिए होना है या उसे करना है । कहानी की थीम यही है । कथा प्रवाह रोचक है तथा सुन्दर भाषा शैली में निबद्ध है । किन्तु क्या वास्तविक जीवन में ऐसा होता है ? रहस्यमय स्थितियों में मां-बाप की मृत्यु, लाखों की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी अकेली लड़की तथा आश्चर्यजनक तरीके से एकाएक उसके पूर्वजन (प्रविता जी) का प्रगट होना, सभी कुछ हिन्दी फिल्म के पर्दे पर घटित होता हुआ महसूस होता है ।

दोनों उपन्यास कुल मिलाकर औसत दर्जे के साबित होते हैं ।

—मृदुला अरुण
सी-207, आई०एफ०सी० स्टाफ कालोनी,
पश्चिम विहार, दिल्ली

कैसे-कैसे मंजर

कैसे-कैसे मंजर (कहानी संग्रह), ले० : प्रेमचन्द सहजवाला, मूल्य : 20 रु०; प्रकाशक : राजधानी प्रकाशन, नई दिल्ली-29

श्री प्रेमचंद सहजवाला के कहानी संग्रह में आठ कहानियां संकलित हैं । इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि इनमें तमाम पात्र हमारे आसपास बिखरे पड़े हैं जिन्हें कभी-कभी हम अनदेखा कर जाते हैं ।

'कैसे-कैसे मंजर' की चार लड़कियों की विवशता उनकी अपनी विवशता मात्र नहीं बल्कि ऐसे असंख्य परिवारों की मां-बाप विहीन लड़कियों की समस्या है जो कुंआरी रह गयी हैं । जिनको कोई समझने की कोशिश नहीं करता है, उल्टे सहानुभूति के नाम पर लांछन लगाये जाते हैं । 'कितना सुख', 'प्रतीक्षा', 'अंधेरे से परे', 'गतिमय', 'जिल्लतें', 'असंतुलित' और 'टुकड़े-टुकड़े आकाश' कहानियों के पात्र भी साधारण आदमी हैं जो अभावों और विवशताओं में जी रहे हैं । विपन्नताओं में जीना ही जसे उनकी मजबूरी है ।

श्री सहजवाला की कहानियों के अधिकांश पात्र ऐसे हैं जो संघर्ष नहीं करते बल्कि जीवन से समझौता कर लेते हैं यही उनकी नियति है । इन कहानियों में एक खूबी है कि ये सहज हैं और सही अर्थों में जिन्दगी की कहानियां हैं । □

आर्थिक विज्ञान का युवाकाल

आर्थिक विज्ञान का युवाकाल, ले० : ए०वो० एनीकिन, अनुवाद : गिरीश मिश्र, मूल्य : 8.50 रु० (सजिल्द) प्रकाशक : पी०पी०एच० (प्रा०) लि०, नई दिल्ली-110055

प्रस्तुत पुस्तक 'आर्थिक विज्ञान का युवाकाल' सोवियत अर्थ-शास्त्री श्री ए०वो० एनीकिन की मार्क्सपूर्व के राजनीतिक अर्थशास्त्र का व्यापक विवेचन है ।

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के 19 अध्यायों में बोझिल और उबाऊ लेखों से अलग हटकर ललित निबधों के रूप में मार्क्स-पूर्व के राजनीतिक अर्थशास्त्र का विवेचन किया गया है । लेखक ने बहुत ही रोचक ढंग से अर्थशास्त्र के उद्भव से लेकर प्रारम्भिक अंग्रेजी समाजवाद तक का विस्तार से विवेचन किया है जिसमें कल्पना चित्र से विज्ञान की ओर यानी कि मार्क्स के गहन अध्ययन की

(शेष अगले पृष्ठ पर)

कम्बन की रामायण से एक प्रसंग

दूरदर्शी राम

राम-सीता के नवविवाहित जीवन की यह एक संदर घटना है। सीता को कहीं से एक तोता मिल गया जो बहुत प्यारा था। अब उन्हें कोई नाम रखना था, सीता की समझ में नहीं आया कि उसका क्या नाम रखा जाय जो अच्छा लगे। आखिर उन्होंने पति से पूछा, क्योंकि हर छोटा-बड़ा काम वह पति के आदेश-उपदेश के अनुसार ही करती थीं।

राम से वह बोलीं—"पतिदेव ! इस तोते को मैं किस नाम से पुकारू ? आप ही कोई सुंदर नाम सुझाइये"। राम ने मुस्कुराते हुए कहा—"क्यों, माता कैकेयी का नाम बड़ा सुंदर नाम है। यही नाम तोते का रखा जाय।"

यह सुनकर सीता पहले कुछ विस्मय में पड़ीं और सोचने लगी कि पतिदेव ने माता कैकेयी का नाम क्यों चुना ? और दो माताएं हैं, भाई हैं और कितने ही प्रिय जन हैं। उन सबका नाम छोड़कर 'कैकेयी' नाम उन्हें क्यों इतना प्यारा लगा ?

सीता को कोई उचित कारण समझ में नहीं आया। इस बारे में पति से पूछने की मन में इच्छा तो हुई, पर कुछ पूछा नहीं; मौन सम्मति दे दी। पति से इस विषय पर वाद-विवाद करना उन्हें अनुचित और असभ्य लगा। बस, उस दिन से वह अपने तोते को 'कैकेयी' नाम से ही पुकारने लगीं।

अब चलिये, रामायण कथा की अन्तिम सीमा की ओर। लंका के अशोक वन में पतिवियोगिनी सीता दुख सागर में डूबी हुई हैं। जीवन व्यथा से छुटकारा पाने के लिए जब वह आत्महत्या कर लेने को उद्यत होती हैं, तभी हनुमान उनके सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। परिचय के पश्चात दोनों में लम्बा वार्तालाप चलता है। आखिर हनुमान बिदा लेकर चलने को हैं, तब सीता अपनी 'चूड़ामणि' (एक आभूषण) उतारकर हनुमान के हाथ में देती हैं और बोलती हैं—"प्रिय बंधु ! मुझसे मिलने के साक्षी स्वरूप तुम इस चूड़ामणि को उनके पास पहुंचा दो। और दो बातें तुम्हें समझाती हूं जो कि हम पति-पत्नी के बीच गोपनीय रहती आयी हैं और जिन्हें सुनकर उनको पूरा विश्वास हो जायेगा कि तुमने मुझही से भेंट की है।

"विवाहोत्सव के अवसर पर जब उन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया था तब उन्होंने मुझे वचन दिया—'इस जन्म भर मैं और किसी स्त्री का विचार तक मन में न आने दूंगा।"

"दूसरी बात यह कि जब मैंने अपने तोते का कोई सुंदर नाम रखने की उनसे प्रार्थना की तब उन्होंने 'कैकेयी' नाम पसंद किया और उनकी इच्छा के अनुसार उस तोते को वही नाम दिया गया।

"जब तुम उनसे मिलोगे तब इन दो बातों का अवश्य जिक्र करो।"

हनुमान यह सुनकर चकित रह गये कि राम ने तोते के लिए कैकेयी-नाम चुना। हनुमान की प्रश्नसूचक दृष्टि देख सीता ने जवाब में कुछ नहीं कहा। हां, उसके चेहरे पर एक मंद मुस्कान छा गई।

सीता की यह मुस्कुराहट देख हनुमान उसका आशय समझ गये। राम ने 'कैकेयी' नाम का चयन क्यों किया, इसका कारण उनकी समझ में आ गया : 'वाह रे वाह ! राम कितने दूरदर्शी हैं, महान हैं ! तोते का स्वभाव है बतायी हुई या सिखायी हुई बात को दुहराना। वह अपनी इच्छा से कुछ भी बोलना नहीं जानता, सुनी सुनाई बात को टर्राता रहता है।

कैकेयी का स्वभाव, वास्तव में, उस तोते सा ही रहा। स्वेच्छा से या स्वबुद्धि से उसने राम को वनवास में नहीं भेजा। मंथरा ने जो कुछ उसको सिखाया उसी को उसने दशरथ से दुहरा भर दिया था। तोते और कैकेयी के स्वभाव में इस अद्भुत समानता के कारण ही तो राम ने तोते को कैकेयी नाम प्रदान किया है। कितने महान दूरदर्शी ठहरे मेरे राम प्रभु !"

हनुमान ने मन ही मन यही सोचते हुए सीताजी से बिदा ला और लंका से निकल पड़े।

एस० गुरुमूर्ति
47, टी नगर रोड, थैनी (तमिलनाडु) 626531

(पुस्तक समीक्षा का शेष)

शुरुआत का भी उल्लेख है। यह पुस्तक मार्क्स-पूर्व के राजनीतिक अर्थशास्त्र, जिसे लेखक ने 'आर्थिक विज्ञान का युवाकाल'—नाम दिया है, तीन दशकों के अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रस्तुत करती है।

लेखक ने कहा है कि जब से समुदायों के बीच और उनके भीतर, श्रम के उत्पादों का विनिमय होने लगा तब से अर्थशास्त्र की शुरुआत हुई। उससे पहले आदिमकाल में जब मनुष्य ने पहली कुल्हाड़ी और धनुष बनाया तब वह टेक्नालाजी थी। अरस्तू सबसे पहले अर्थशास्त्री बने। जिन्होंने राजनीतिक अर्थ-शास्त्र की कुछ कोटियों की स्थापना की। 16वीं शताब्दी के अंत और 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अरस्तू के विचारों को आगे बढ़ाया गया। सामाजिक आर्थिक साहित्य में अंतोने द मोश्रेतियांसे, सेनोअ द वास्तेविल ने सबसे पहले राजनीतिक अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग किया।

पुस्तक का अनुवाद श्री गिरीश मिश्र ने किया है। अनुवाद की विशेषता यह है कि नीरस विषय को बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है कि मानो कोई कहानी पढ़ रहे हों— वैसी ही दिलचस्प और रोचक। पुस्तक के अंत में अनुक्रमणिका दी गयी है यह एक महत्वपूण संदर्भ ग्रंथ के रूप में उपादेय पुस्तक है जो अर्थशास्त्र की स्थापना, उसके क्रमिक विकास और परिवर्तित स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालती है।

—रोहित
सी-8/97-ए, लारेंस रोड, दिल्ली-110035

महादेवी वर्मा को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार

छायावादी चतुष्टय की मूर्धन्य हिन्दी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा को सन् 1982 का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की गयी है। जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ है।

डेढ़ लाख रुपये का यह पुरस्कार महादेवी जी को उनके विशिष्ट काव्य संग्रह "यामा" के लिए दिया गया है, जो हिन्दी के गीतात्मक काव्य साहित्य की एक दिशा-दर्शक कृति है। "यामा" का प्रथम प्रकाशन सन् 1939 में हुआ था और इसमें महादेवी जी की चार कृतियां— नीहार, रश्मि, नीरजा और सान्ध्य गीत – की सर्वश्रेष्ठ कविताएं संकलित हैं।

सन् 1982 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के संबंध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पुरस्कार का निर्णय करते समय पहली बार संशोधित नियमों के अन्तर्गत पुरस्कार के लिए विचाराधीन पुस्तकों के प्रकाशन की अवधि और काल सीमा को तोड़ दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप साहित्यकारों के 1977 तक प्रकाशित समग्र कृतित्व का विचार सीमा में आना सम्भव हो सका।

महादेवी जी का श्रेष्ठतम काव्य कृतित्व सन् 1939 तक प्रकाशित हो चुका था। संशोधित नियमों के अन्तर्गत वह भी विचार सीमा में आ गया।

महादेवी जी का गद्य लेखन के क्षेत्र में भी असाधारण महत्व है। अपने संस्मरणों में उन्होंने जीवन के विभिन्न रूपों और पक्षों की जो मार्मिक छवियां प्रस्तुत की हैं वे आज भी अद्वितीय मानी जाती हैं।

"यामा" (1939) और "दीपशिखा" (1942) के अतिरिक्त इनकी 18 अन्य काव्य एवं गद्य कृतियां हैं। इनमें "स्मृति की रेखाएं" (रेखाचित्र 1940), "अतीत के चलचित्र" (संस्मरण, 1941) श्रृंखला की कड़ियां (चिन्तन, 1942), "संधिनी" (कविता संग्रह; 1964), "पथ के साथी" (सस्मरण, 1956), "क्षणदा" (चिन्तन, 1956), "गीत पर्व" (कविता संग्रह, 1970), "स्मृति-चित्र" (संस्मरण, 1973) विशेष लोकप्रिय और अपने-अपने क्षेत्र में मील के पत्थर जैसी बनी। वैदिक और संस्कृत साहित्य की चुनी हुई रचनाओं का पद्यानुवाद "सप्तपर्णा" आपकी प्रतिभा का विलक्षण चमत्कार है।

आप कुछ काल-1932 में, "चांद की सम्पादिका भी थीं, और इसी प्रकार 1955 में "साहित्यकार" की भी। 1934 में उन्हें "सेकसरिया" पुरस्कार भेंट किया गया था और 1944 में "मंगलाप्रसाद पारितोषिक"। भारत सरकार ने 1956 में इन्हें "पद्मभूषण" की उपाधि से विभूषित किया, और उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय ने 1979 में डी. लिट् की मानद उपाधि से। उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रवर्तित "भारत भारती" पुरस्कार सर्वप्रथम आपको समर्पित हुआ है।

आचार्य जी० सुन्दर रेड्डी साहित्य वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित

दक्षिण भारत में हिन्दी के स्तरीय अध्ययन-अध्यापन और प्रचार के साथ आलोचना-परक ग्रंथ-रचना के कार्य में जिन विद्वानों ने अपना विशेष योगदान दिया है, उनमें प्रो० सुंदर रेड्डी का स्थान महत्वपूर्ण है। यह सारे दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी सज्जनों के लिए बड़े गर्व का विषय है कि पहली बार एक दाक्षिणात्य हिंदी विद्वान आचार्य सुंदर रेड्डी को पं० मदन-मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, जार्ज अब्रहाम ग्रियर्सन, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि महान् हिन्दी सेवियों को प्राप्त (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से) 'साहित्य वाचस्पति की मानद उपाधि से गौरवान्वित किया है।

प्रो० रेड्डी का जन्म नेल्लूर (आंध्र प्रदेश) में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ था। महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से आप बाल्यावस्था में ही हिंदी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए, और कर्ण वीर नागेश्वर राव ने श्री सुंदर रेड्डी को हिंदी के

अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। फलस्वरूप हिन्दी भाषा और साहित्य मेंउच्च शिक्षा को प्राप्त करने के लिए सन् 1934 में प्रयाग के हिन्दी विद्यापीठ में प्रविष्ट होकर साहित्यरत्न की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उसके पश्चात् आप महान राष्ट्रीय संस्थान काशी विद्यापीठ में शामिल हुए और वहां आचार्य नरेंद्र देव तथा पं० कमलापति त्रिपाठी जैसे विभूतियों के संपर्क में आये और उनसे प्रभावित हुए। डा० भगवानदास की सलाह पर आप स्नातक उपाधि हेतु जामिया मिलिया में प्रविष्ट हुए जो डा० जाकिर हुसैन जैसे महान् विभूति के संरक्षण में चल रहा था।

अध्ययन के पश्चात् सन् 1942 में आप आंध्र विश्वविद्यालय से संबद्ध हुए और आंध्र विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन का बीज वपन किया।

प्रो० सुंदर रेड्डी के करीब दो सौ शोध-पत्र हिन्दी, तेलुगु और अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी प्रमुख कृतियां हैं— 'साहित्य और समाज', 'मेरे विचार', 'हिन्दी और तेलुगु का तुलनात्मक अध्ययन', 'दक्षिण की भाषाएं और उनका साहित्य', 'वैचारिकी', 'शोध और बोध', 'हिन्दी तथा द्राविड़ भाषाओं के समान-रूपी भिन्नार्थी शब्द', 'हिन्दी साहित्य के विकास में दक्षिण भारत का योगदान', 'अंतरभारती', 'तेलुगु दारुल' (तेलुगु), 'लैंग्वेज-प्राब्लम इन इन्डिया' (अंग्रेजी) आदि।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास तथा हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद आदि संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर आपने हिन्दी की महान सेवा की है।

आप हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद के रजत जयंती समारोह के अवसर (1966) पर 'साहित्याचार्य' की उपाधि से विभूषित किये गये। सन् 1968 में इन्होंने आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी का अपनी मौलिक हिन्दी रचनाओं के लिए सर्वोच्च सम्मान प्राप्त किया। बनारस हिन्दी विश्वविद्यालय से अपनी हिन्दी रचनाओं के लिए (1975) ताम्रपत्र प्राप्त किया। आपके निबंध-साहित्य "शोध और बोध' को उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत किया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने अपनी स्वर्ण जयंती के अवसर पर आपका सम्मान किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (दि. 2-7-1983) अपने कुरुक्षेत्र के अधिवेशन में श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', श्री अक्षयकुमार जैन, डा० प्रभाकर माचवे आदि महान हिन्दी विद्वानों के साथ आचार्य सुंदर रेड्डी को 'साहित्य-वाचस्पति' के मानद उपाधि से सम्मानित कर गौरवान्वित हुआ है।

प्रस्तुतकर्त्ता :—

पी. वी. नरसारेड्डी, एल. आई. जी. 29, एम. वी. पालम कालोनी विशाखापट्टनम—530017

रांची में डा० कामिल बुल्के पुण्य तिथि समारोह सम्पन्न

रामकथा के मर्मज्ञ एवं समर्पित विद्वान डा० कामिल बुल्के की प्रथम पुण्य तिथि रांची स्थित जेवियर समाज सेवा संस्थान के सभागार में 18 अगस्त को आयोजित की गई। जीवन पर्यन्त रामकथा को अपना सम्बल बनाने वाले डा० बुल्के को श्रद्धा सुमन अर्पित करने के लिए अनेक विद्वानों ने अपनी उपस्थिति दी। समारोह की अध्यक्षता हिन्दी जगत के सुपरिचित आलोचक एवं बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष डा० कुमार विमल ने की। उन्होंने डा० बुल्के की हिन्दी जगत के अनन्य एवं महान् साधक के रूप में चर्चा की। डा० बुल्के का सतत साहचर्य प्राप्त करने वाले डा० दिनेश्वर प्रसाद ने कहा कि डा० बुल्के अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश का परिवर्द्धन करने के आकांक्षी थे किन्तु नियति के क्रूर थपेड़ों ने उन्हें हमसे छीन लिया।

रांची एक्सप्रेस के सम्पादक श्री बलवीर दत्त ने सरकार की इस घोषणा पर हर्ष व्यक्त किया कि बुल्के के सम्मान में अहिन्दी भाषी हिन्दी सेवियों के लिए पुरस्कार प्रदान करने की व्यवस्था की जायेगी। रॉची विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० वचनदेव कुमार ने स्व० बुल्के को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि रामकथा पर उनका शोध कार्य उनकी अमरता के लिए पर्याप्त है। सभा में हिन्दी के प्रख्यात उपन्यासकार डा० श्रवण कुमार गोस्वामी श्री मधुसूदन चौधरी, महाधर्माध्यक्ष पी० केरकेट्टा, डा० स्कोलास्टिका कुजूर, डा० बनेश्वर पाठक, डा० फलकेरिया मेंगरा तथा अन्य अनेक वक्ताओं ने डा० कामिल बुल्के के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० कुमार विमल ने डा० कामिल बुल्के की अनन्य सेवा भावना तथा तुलसी साहित्य में उनकी गहरी पैठ की उन्मुक्त शब्दों में सराहना की। डा० बुल्के की स्मृति में एक स्मारक निर्माण का सुझाव भी रॉची एक्सप्रेस के सम्पादक श्री बलवीर दत्त ने दिया। पुण्य तिथि समारोह का समापन फादर इमैनुअल बारवला के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ।

—**डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह,**

प्राचार्य, स्वामी शंकराचार्य महाविद्यालय, करमटोली, रॉची

बीकानेर में नाट्य प्रशिक्षण शिविर

बीकानेर में गत 1 जून से 7 जुलाई तक नाट्य प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। स्थानीय नाट्य संस्था संकल्प द्वारा टाउन हाल में आयोजित इस शिविर में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की यात्रा एवं शिविर निर्देशिका रेणुका इसरानी ने रंगकर्मियों को नाटक प्रस्तुतीकरण का व्यवहारिक ज्ञान दिया।

नाट्य शिविर में 5-6 जुलाई को शम्भू मित्र-अमित मैत्र के बंगला नाटक 'कांचन रंग' का आयोजन किया गया। इस नाटक का हिन्दी अनुवाद नेमिचन्द्र जैन ने किया है। नाटक के कथ्य में बंगाल के समाज के किसी मध्यवर्गीय कंजूस एवं स्वार्थी परिवार की पस्थितियों का दिग्दर्शन के साथ-साथ तनाव, खीज और अर्न्तद्वन्द को हास्य के साथ रेखांकित किया गया है।

अभिनय में तनवीर मालावत, कविता भादणी, विष्णुकांत, रेणुका इसरानी, कैलाश, मधु आचार्य और आनन्द पात्रानुकूल रहे। रेणुका का अभिनय अवश्य प्रभावशाली रहा जो उसकी निर्देशकीय प्रतिभा को स्पष्ट करता है।

—इकवाल हुसैन
शेखों का मोहल्ला, पुरानी गजनेर रोड, बीकानेर (राज.)

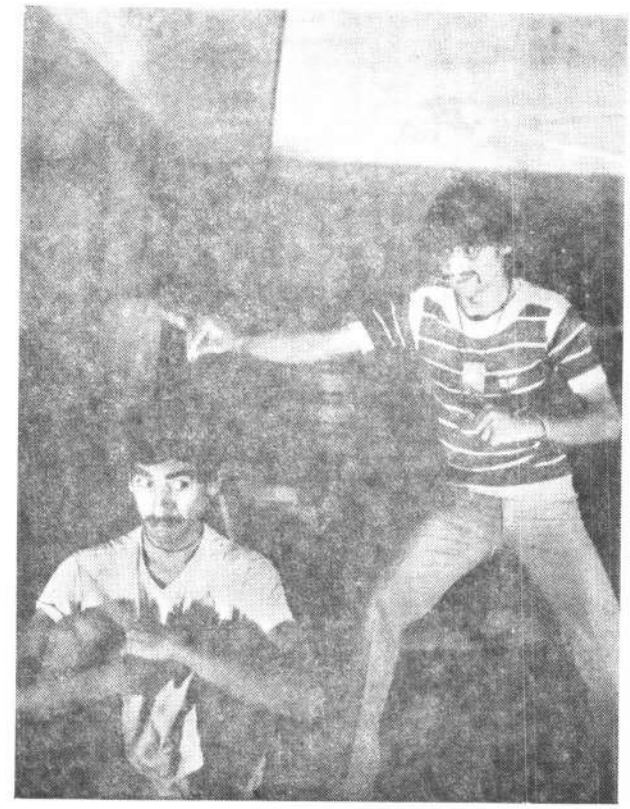

कांचन रंग का एक दृश्य

विलासपुर में अक्षयवट का मंचन

डी० चन्द्र का नवीनतम नाटक 'अक्षयवट' 23 मई, 1983 को बिलासपुर में मंचित किया गया। 'अक्षयवट' नाटक चाणक्य के जीवन पर आधारित है। इस नाटक में चाणक्य के व्यक्तित्व को निर्मित करने वाले, मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। 'अक्षयवट' एक राजनीतिक व्यंग्य नाटक है। इसमें सत्ता के भ्रष्ट आचरण को, कुछ इस प्रकार चित्रित किया गया है कि वह आज के लिये भी प्रासंगिक बन गया है।

निर्देशक डी० बी० दलेला ने इसे 'फेड आउट' पद्धति से प्रस्तुत किया। नाटक के कलाकारों में अरविन्द शर्मा (चाणक्य) कु० अरुणा दीक्षित (सुभाषिणी), देवानन्द दुबे (शकटार), कु० अनिता दीक्षित (विचक्षणा), सुभाष मुकर्जी (बीजबुद्धि), मंगलेश्वर सिंह (नागरिक-1), डी० बी० दलेला (नागरिक-2) संजय वर्मा (सैनिक) और धीरेन्द्र शुक्ल (विरुद्धक) अपनी-अपनी भूमिकाओं में काफी जीवन्त लगे।

जगदीश स्वरूप टंडन
अंग्रेजी-विभाग
सी० एम०डी० कालेज, बिलासपुर, (म० प्र०)

आजकल देश का साहित्यक-सांस्कृतिक प्रतिनिधि मासिक बन गया है। प्रत्येक अंक में देश के विभिन्न साहित्यकारों की रचना प्रकाशित तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का सुन्दर परिचय मिलता है। जुलाई अंक में गुलेरी जी पर विशेष सामग्री प्रकाशित कर आपने अभिनन्दनीय कार्य किया है। आपके सम्पादकीय लेख भी दिशाबोधक होते हैं। गुलेरी जी, पराड़कर जी तथा 'राष्ट्ररत्न' शिवप्रसाद गुप्त पर विशेष सामग्री के प्रकाशन की योजना स्तुत्य है।

—लक्ष्मीशंकर व्यास, वाराणसी

जुलाई, 83 का अंक मिला। एक साथ इतनी सारी सामग्री पाकर मन प्रसन्न हो गया। गुलेरी जी के बारे में आम पाठकों को यही पता है कि तीन कहानियों के अलावा उन्होंने और कुछ नहीं लिखा। पर डा० मनोहर लाल के लेख से उनके बारे में संक्षेप में लगभग पूरी जानकारी मिल जाती है और अब जिज्ञासा होने लगी है कि गुलेरी साहित्य पढ़ने को मिले।

—राम भवन द्विवेदी
वाराणसी-212002

अस्वस्थता की स्थिति में इस बार 'आजकल' का जून वाला अंक आद्यान्त पढ़ गया। संतुलित और श्रेष्ठ सामग्री के लिए यह अंक जहां संग्रहणीय है वहां आप इसके लिये बधाई के पात्र हैं क्योंकि पत्रिका का श्रेष्ठ होना अथवा न होना संपादक के विवेक और परिश्रम पर निर्भर है।

वैसे तो अंक की सभी सामग्री श्रेष्ठ है परन्तु मुझे डा० योगेन्द्र नाथ शर्मा, डा० शम्भुनाथ चतुर्वेदी महेन्द्र नाथ पांडे, डा० भैरूलाल गर्ग, शंकर दयाल सिंह की रचनाएं विशेष पसंद आईं। 'क्रांति की कविता बनाम कविता की क्रांति' निबन्ध कई नये प्रश्नों को उठाने में सक्षम हैं, जिन पर चर्चा की जा सकती है। 'मानस का हंस और खंजन नयन' निबन्ध में लेखक ने खंजन नयन के साथ न्याय नहीं किया है और न नगर की उन कमजोरियों को सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। महादेवी से कमला भट्ट की बातचीत दमदार है। "मानवतावादी समीक्षक : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी" पर लेखक का लिया गया निर्णय उत्कृष्ट है। "मारकण्डे का इण्टरव्यू" उनके रचनाकार को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हुआ है। 'राजी सेठ के बहाने' शंकर दयाल सिंह का निबन्ध बड़ा ही रोचक है।

—डा० रामअवध शास्त्री, अमरोहा

बहुत दिनों के बाद एकाएक "आजकल" का जुलाई 83' अंक हाथ में आया। इस बार तीन महापुरुषों पराड़कर जी, गुलेरी जी एवं शिवप्रसाद गुप्त जी की शती वर्ष की चर्चा एवं सम्बन्धित विचारपूर्ण सामग्रियों का अद्भुत रूप देख बहुत हर्ष हुआ। गुप्त जी पर लेख नहीं है। गुलेरी जी का लेख बहुत सुंदर एवं सूचनापूर्ण है। पराड़कर जी पर बड़ा ही उपयुक्त लेख व्यास जी का है। व्यास जी ने अनेक नवीन तथ्य दिये हैं। आप एवं व्यास जी ऐसी शोधपूर्ण सामग्री हेतु बहुत बधाई के पात्र हैं। गुप्त जी पर भी श्री व्यास जी से ही लिखवायें। आजकल उनके कई लेख गुप्त जी पर मिले हैं, उनकी शती समारोह के संचालक व्यास जी ही हैं। अतः सर्वथा साधिकार लेखक वही होंगे।

"आजकल" अपनी साज-सज्जा एवं सामग्री पारंपरिक रूप से बनाए रखें, इसके लिये बहुत-बहुत शुभ-कामनाएं।

—गिरीशचन्द्र चौधरी, वाराणसी

भरपूर साहित्यिक रंगिमा, मधुरिमा और सुषमा से समन्वित जुलाई अंक मिला। डा० शम्भुनाथ सिंह के नवनीत 'संवेदना के स्तर' आन्दोलित से कर गये। 'आदमकद दर्पन तो है, आदमकद आदमी नहीं' नामक गीत अपने मिनी फार्म में काफी पेनोरमा पिरोये हुए है। युगीन व्यथा-कथा को रेखांकित करती हुई गीत-पंक्ति अपने आप में पूर्ण है। "आजकल" का कमनीय कलात्मक कलेवर किसी को भी बांध सकने में पर्याप्त समर्थ है। यकीन मानें, आजमगढ़ बुक-स्टाल पर देखते-देखते पचास प्रतियां हाथों-हाथ बिक गईं। यह आपकी सुसंपादन कला का जादू ही है। अल्लाह करे जोरे-कलम और जियादः।

—मधुर नज्मी, आजमगढ़

"आजकल" का जुलाई, 83 अंक देखा। यह अंक 'आजकल' की गौरवमयी परंपरा के अनुरूप है। गुलेरी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सामग्री देकर आपने सराहनीय कार्य किया है। जन्म-शती के अवसर पर आपका यह प्रयास सर्वथा उचित है। "फुटबाल" एक साधारण रचना लगी। छोटा नागपुर के वन्य-अंचल और आदिवासी जीवन पर कुछ सामग्री प्रकाशित करें।

—डा० बच्चन पाठक 'सलिल', जमशेदपुर

गुलेरी जी पर तो कुछेक पत्रिकाओं ने थोड़ा-बहुत छापा भी (मधुमती का जनवरी-फरवरी अंक इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा) किन्तु पराड़कर जी पर अपेक्षित सामग्री का अभाव खटक रहा था। चलिये, कम से कम व्यास जी (श्री लक्ष्मी शंकर) ने तो इस कमी को दूर किया, आभारी हूं, अनुकंपित हूं। डा० ब्रजराज किशोर का निबंध—'कबीर कूतराम का' अच्छा लगा। देवेन्द्र उपाध्याय की कहानी 'पितृ भक्ति' में समयगत सत्यता का सुन्दर बोध हुआ है। आगामी अंक में श्री शिवप्रसाद गुप्त जी को पढ़ने-जानने के लिए आशान्वित हूं। 'आजकल' के समस्त सहयोगियों को इसकी अटूट अविराम परंपरा के लिये मेरा हार्दिक साधुवाद।

—रामबदन राय, (उ० प्र०)

दूर देश में अपने ढोल की थाप

कैक्टस के दांत : लेखक अभिमन्यु अनत; प्रकाशक — ज्ञान भारती, 4/14, रूप नगर, नई दिल्ली-110 007; मूल्य— 20 रुपये; पृष्ठ संख्या 104

एक ऐसे रचनाकार के लिए जो अपनी सारी कसमसाहट साहित्य की एक विधा में अभिव्यक्त करता रहा है और फिर शेष व्यथा को दूसरी विधा में रूप देने की कोशिश करता है, अपने आरम्भिक दौर में कई संयोजनात्मक परेशानियों से मुठभेड़ आवश्यक सी हो जाती है। वैसे कुछ ऐसे रचनाकार भी हैं जो अपनी प्रतिभा का भरपूर इस्तेमाल हर जगह बखूबी कर लेते हैं। मारिशस के यशस्वी कथाकार अभिमन्यु अनत के प्रथम काव्य-संग्रह 'कैक्टस के दांत' की सौ से ऊपर कविताओं में कुछ ऐसी काव्यगत रुकावटों और उनसे जूझकर एक भाव-भूमि निर्माण करने के उत्साह की परिस्थितियों और स्थितियों की झलक मिलती है। इन स्थितियों और परिस्थितियों के बीच कहीं-कहीं कुछ ऐसा भी है जो निजी और सामाजिक दोनों है। सवाल है, उस निजीपन और सामाजिक चेतना में सर्जनात्मक गुणों की सफल-असफल छवियों का।

नयी पीढ़ी के लेखकों में चर्चित, अभिमन्यु की कविताएं पढ़कर वैसी तसल्ली नहीं मिल पाती जैसी उनकी कहानियों और उपन्यासों से मिलती रही है। एक कवि के रूप में अभिमन्यु अनत की अभी शुरुआत ही है। इसलिए कवि कविता से जो रिश्ता बांध पाया है वह कई स्थलों पर बिल्कुल औपचारिक सा प्रतीत होता है। फिर भी सारी कविताएं कुछ ऐसे सूत्र छोड़ जाती हैं जिससे आभास होता है कि कवि की आकांक्षा इस औपचारिकता को घनिष्ठता में तब्दील करने की है।

"और उसने यह भी चाहा कि उतना कुछ पी चुकने के बाद/उसे प्यास लगती ही रहे। लगती ही रहे" कवि की यह तृष्णा अन्य कविताओं में भी देखने को मिल जाती है पर वहां पानी की जगह 'मजदूरी का पसीना' और पीड़ा ले रही है'। लेकिन यहां सपाटबयानी ही हावी हो जाती है। दरअसल रचनाकार की तृष्णा के चित्रण की नाकामयाबी में उसके द्वारा आत्मीयता बरतने की अक्षमता या संवेदना के स्तर पर उसकी निर्धनता नहीं बल्कि कविता की संरचनात्मक गड़बड़ी एवं बिम्ब और प्रतीकों के सही तालमेल के अभाव का दुष्परिणाम है।

अभिमन्यु अनत की कविताए इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं कि वे बड़ी तटस्थ और निश्चल हैं, चाहे वह व्यक्तिगत मसला हो या सामाजिक सरोकार। किसी तरह का पूर्वाग्रह या बड़-बोलापन खोजना इन कविताओं के संग अन्याय होगा। इन कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि दूर देश में अपने ढोल की थाप सुनाई दे रही हो और वायु के प्रवेग के साथ उतराती चली आ रही है—कविताओं में अनुगूंज गहराती नहीं है परन्तु स्वर-लहरियां इस बात का द्योतक हैं कि रचनाकार जिस सांस्कृतिक जमीन पर खड़ा है उसमें गंध हमारे जैसी ही है। इसका कारण भारतवर्ष और मारिशस के बीच जातीय, भाषाई और भाई चारेपन की घनीभूत समीपता है जिससे कविताओं की ध्वनि में साम्य पैदा होता है। इसके अतिरिक्त ये कविताएं अपने देश के समकालीन बोध से भी हमारा परिचय कराती हैं। यह समकालीन बोध मारिशस की बदलती राजनीति की ओर इशारा करता है जिसे हम पिछले तीन-चार वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर देख रहे हैं। 'सफेद खून', 'तृप्ति', 'वह अधूरा अधिकार', 'उल्लसित वह उतना ही है', 'कांच का टुकड़ा' इत्यादि ऐसी ही कविताएं हैं।

अभिमन्यु की कविताओं से इतना जरूर आभास होता है कि 'कैक्टस के दांत' उनके ईर्द-गिर्द हैं जो कभी उसे बाहर भी चुभते तो कभी अंदर भी। लेकिन इस चुभन से उभरा दर्द

विमल कुमार

अभिमन्यु की कविताओं में पूरी तरह उभर नहीं पा रहा फलतः दर्द की पूरी खिदत पाठक नहीं झेल पा रहा और पीड़ा का काव्य सुख वंचित ही रह जाता है। जहां अभिमन्यु ऐसी पंक्तियां लिखते हैं "इन्द्रधनुष कुकुर मुते की तरह उग आते हैं। कट गए गन्नों के खेतों में" इससे जो एक बिम्ब उभरता है, उसका संयोजन और निर्वाह मूल्यों की राख को खाद के साथ मिलाकर। बंजरों को बिखेरा जा रहा नये अंकुरों के लिए' में नहीं हो पाता। ऐसी रचनात्मक एकसूत्रता का अभाव अभिमन्यु के 'विद्रोह कांटे' के पूरे तेवर की गर्म जोशी को व्यक्त नहीं कर पाता। जहां अभिमन्यु की चेतना सर्जनात्मक गुणों से सम्पन्न हुई है, वहां उन्हें सफलता भी हाथ लगी है "मजदूरों की औलादों काले सपने/चट्टानों पर छटपटाने लगे हैं या फिर 'कब उजाले में/भेड़िया पहचाना जाएगा/जो अंधेरे में कुतरता आ रहा/अस्तित्व को"।

कुल मिलाकर अभिमन्यु अनत की कविताओं से हमें यह विश्वास प्राप्त होता है कि रचनाकार 'कैक्टस के दांतों' की बाह्य एवं आन्तरिक चुभन को देश, काल और निजीपन के सन्दर्भ में' ईमानदारी से अभिव्यक्त करता है। ऐसा विश्वास हमें आश्वस्त करता है कि वे और बढ़िया कविताएं लिखेंगे — भारतीय काव्य भूमि से जुड़ते हुए।

184-सी, दिल्ली प्रशासन फ्लैट्स, तिमारपुर, दिल्ली-7

परिचर्चा गोष्ठी

नीम की भूमिका अलग है

पिछले दिनों सुप्रसिद्ध कवि डा० मोतीलाल जोतवाणी की हिन्दी कविताओं के पहले संग्रह 'नीम की भूमिका अलग है' पर दिशाबोध की ओर से एक परिचर्चा-गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी की अध्यक्षता डा० रामदरश मिश्र ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में हिन्दी के वरिष्ठ कवि त्रिलोचन थे।

पुस्तक पर सबसे पहले श्री जगदीश चतुर्वेदी ने अपना आलेख पढ़ा, उन्होंने कविताओं के आधार पर कवि को आत्म-साक्षात्कार का कवि सिद्ध किया। उनके मतानुसार इन कविताओं में जिन्दगी की कड़वाहट चित्रित हुई है लेकिन कवि का विश्वास सतत संघर्ष में होने के कारण कहीं भी नैराश्य या ऊब नहीं है। दूसरा आलेख पढ़ने के पूर्व डा० जीवन प्रकाश जोशी की टिप्पणी पढ़ी गई जिसमें डा० जोशी ने कविताओं की सोच को वस्तुपरक मानते हुए उन्हें अकादमीय स्तर का बताया। वाक्य विन्यास में कवि की सजगता स्वीकार करते हुए उन्होंने इस दृष्टि से शिथिल स्थलों की ओर भी ध्यान दिलाया। बाद में अपने वक्तव्य में श्री विजय कपूर ने उनकी कविताओं में अंग्रेजी शब्दों के

दिविक रमेश

इस्तेमाल पर अपना क्षोभ प्रकट किया। 'एक दिया चोरी करता हूं' कविता को उन्होंने बहुत अच्छी कविता बताया।

विषय का प्रवर्तन श्री श्याम विमल ने किया। उन्हें ये कविताएं सघन लगीं। कविताओं की विविधता भी उन्हें अच्छी लगी। कविता पर लिखी गयी कविताओं के प्रति उन्होंने जरूर शिकायत की। विशिष्ट अतिथि त्रिलोचन ने पूर्व पढ़े गए सभी आलेखों पर टिप्पणी करते हुए विस्तार से कविताओं पर चर्चा की। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि किसी कवि को अकादमीय स्तर का कहा जाए या खपते हुए अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल पर आपत्ति की जाए। उनके अनुसार आलोचक को कविता की पहचान होनी चाहिए। उन्हें यह अच्छा लगा कि डा० जोतवाणी पर किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नहीं है और इनमें कवि की अपनी पहचान है। उन्होंने कविता के अन्यान्य पक्षों पर बात करते हुए कवि और कविता का अपनी परम्परा से गहरा सम्बन्ध होने पर बल दिया। उनके अनुसार कवि शीर्षक के जरिए, शायद अनजाने ही जनपदीय संस्कृति की ओर संकेत करता है। डा० सत्यभूषण वर्मा ने अंग्रेजी शब्दों पर त्रिलोचन की राय का समर्थन करते हुए बहस को आगे बढ़ाया और कहा कि इस संकलन में अनेक कविताएं ऐसी हैं जो शुरुआत में सामान्य होते हुए भी अन्त में झटका देते हुए झकझोर देती हैं और हृदय को छूती हैं। डा० गंगा प्रसाद विमल अगले वक्ता थे। उन्होंने अपना मत मौखिक रूप में व्यक्त करने की बजाए पुस्तक पर किसी पत्रिका के लिए लिखी गयी अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी के द्वारा व्यक्त किया। उन्हें ये कविताएं खुली और पारदर्शी लगीं। कविताओं में उपयुक्त खास ढंग की 'संवादिता' ने उन्हें प्रभावित किया। उन्हें अच्छा लगा कि ये कविताएं पाठक को भावुकता के बाहर लाती हैं और उपदेशात्मकता के बोझ से बची हैं। ऊपरी सरलता के बावजूद उन्हें ये कविताएं बहुत ही गहरे में ले जाने वाली लगी। इसीलिए उन्होंने इस संग्रह को कई बार पढ़ने की सलाह दी। बनारस के युवा कवि दानिश ने भी अपना मत लिखित रूप में ही पेश किया। उन्हें इन कविताओं में 'सन्देह' की प्रवृत्ति प्रमुख लगी। संदेह को उन्होंने कवि के माहौल की देन माना। उन्हें कविताएं सूफियाना ढंग से तर्क-वितर्क करती हुई लगी। बहस में श्री नरेन्द्र सिन्हा ने भी भाग लिया। उन्होंने शुरू में ही यह घोषित करते हुए कि पुस्तक में प्रकाशित दिविक रमेश के मत कि ये कविताएं संबंधों की खोज करती हैं, से मेरी सहमति है, अपना लिखित मत प्रस्तुत किया। स्वामीशरण स्वामी को ये कविताएं मध्यवर्गीय मानसिकता की कविताएं लगीं।

अध्यक्षीय भाषण में डा० रामदरश मिश्र ने इन कविताओं के खुलेपन को एक बड़ी उपलब्धि माना। कविताओं की टेकनीक पर बात करते हुए उन्होंने कहा—जहां दो विरुद्धों को एक साथ रख कर तनाव कायम किया है वहां अर्थ की अतिरिक्त छवि भी उभरी है। उन्हें अनेक कविताएं समूचे तौर पर अच्छी लगीं। उन्होंने कहा कि डा० जोतवाणी का मुहावरा हिन्दी दुनिया से अलग नहीं है। कुछ कविताएं ऐसी जरूर हैं जो कविताएं नहीं बन पाईं।

बी/57, अमर कालोनी, लाजपतनगर, नई दिल्ली-54

हाड़ौती आंचलिक साहित्यकार सम्मेलन

घनश्याम वर्मा

कोटा में साहित्यिक संस्था श्री भारतेन्दु समिति के तत्वावधान में 13 व 14 अगस्त को दो दिवसीय हाड़ौती आंचलिक साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया।

उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए कादम्बिनी के संपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी ने कहा कि साहित्य सदैव इतिहास का जीवन्त दस्तावेज रहा है। जनमानस को उद्वेलित करने वाला आंचलिक साहित्य महान होता है और इतिहास में मानदण्ड स्थापित कर सकता है। श्री अवस्थी ने

समारोह को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि श्री राजेन्द्र अवस्थी।

कहा कि साहित्यकार को अस्मिता की पहचान करनी चाहिए। जो साहित्यकार वातावरण की आवश्यकता के अनुरूप साहित्य का सृजन नहीं करता कालान्तर में उसका कृत्य निन्दनीय कहा जाता है।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राजस्थान समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष श्रीमती नगेन्द्र बाला ने कहा कि साहित्यकार देश व समाज की आत्मा है। जब-जब समाज अंधेरी गलियों में भटक जाता है तब साहित्यकार ही सही रास्ता दिखाने वाला होता है। कार्यक्रम के संयोजक डा० दयाकृष्ण विजय ने कहा कि एक ओर जहां विज्ञान शास्त्रास्त्रों के उत्पादन की होड़ में लगा मानवता को मृत्यु के कगार पर खड़ा कर रहा है, वहीं भौतिक आवश्यकताओं की वृद्धि ने मनुष्य को अपराध वृत्ति तक भी पहुंचा दिया है। सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों की गिरावट का संकट भी हमारे सामने है। ऐसी स्थिति में समाज को साहित्यकार के अलावा अन्य कोई सही मार्ग नहीं दिखा सकता।

उसी दिन अपरान्ह हाड़ौती अंचल के साहित्यकारों की पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी का उद्घाटन स्वाधीनता सेनानी श्री इन्द्रदत्त ने किया।

समारोह के दूसरे दिन 14 अगस्त को प्रातः द्वितीय संगोष्ठी में 'हाड़ौती अंचल में गद्य साहित्य का विकास' विषय पर डा० प्रेम भटनागर ने पत्र वाचन किया। इसके तुरन्त बाद "हाड़ौती अंचल के साहित्यकार समस्याएं और समाधान" विषय पर परिचर्चा का आयोजन किया गया।

समापन समारोह में साहित्य सेवी डा० बद्रीप्रसाद पंचोली का अभिनन्दन किया गया। डा० अवस्थी ने समिति द्वारा प्रकाशित 'कोटा काव्य गंधा' पुस्तक एवं 'स्मारिका' का विमोचन भी किया। रात्रि को कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता वनस्थली विद्यापीठ के डा० प्रेमचन्द विजय वर्गीय ने की।

— प्रस्तुति घनश्याम वर्मा सूचना केन्द्र कोटा (राज०)

कवि सभा में द्वितीय अंतर्प्रांतीय अधिवेशन

□ राम शंकर गुप्त

रा उरकेला : कवियों के लिये, कवियों के द्वारा, कवियों की संस्था—"कवि सभा" का द्वितीय अन्तरप्रान्तीय अधिवेशन 23 एवं 24 जुलाई को सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन किया 'दिवंगत हिन्दी सेवीकोष' के प्रणेता आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता की डा० अर्जुन सत्पथी ने। उद्घाटन भाषण में सुमन जी ने भाषा, वाद, पीढ़ी, प्रान्त से परे कवि मात्र के लिये आम मंच 'कवि सभा' में आने के लिये कवियों को आह्वान किया। डा० सत्पथी ने कवि सभा को राष्ट्रीयता की दिशा में सशक्त कदम बतलाया और इसके संस्थापक आचार्य को बधाइयां दी। यह ज्ञातव्य है कि कवि सभा की 22 इकाइयां देश में कार्यरत हैं।

अधिवेशन में कई भाषाओं और प्रान्तों से आए कवियों व कवयित्रियों ने भाग लिया।

कवि सभा में माइक पर हैं डा० शशिकर

इस अवसर पर अधिवेशन में भाग लेने वाले कवियों की कृतियों की प्रदर्शनी लगाई गई जिसके संयोजक थे अनिल कुमार सिंह।

सीताराम पथ, चक्रधरपुर, 833102

मारिशस में हिन्दी कविता-संग्रह का विमोचन

मारिशस के मोका जिले में स्थित 'महात्मा गांधी-संस्थान' ने श्रद्धेय सोमदत्त बखोरी जी के 'सांप भी, सपेरा भी', नामक कविता-संग्रह का दिनांक जून 1983 को विमोचन-समारोह किया था।

इस विमोचन से मारिशस के हिन्दी-प्रेमी यह आशा व्यक्त कर रहे हैं कि इस समय मारिशस में पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में पाये जाने-वाले गतिरोध के स्थान पर फिर से पुस्तक-प्रकाशन का नया वातावरण बनेगा। यहां, यह भी याद दिलाना अनुचित नहीं होगा कि मारिशस में पुस्तक-विमोचन की परम्परा का श्रीगणेश एवं विमोचन शब्द का प्रचलन, श्री सोमदत्त बखोरी जी ने ही अपनी पुस्तक 'हिन्दी इन मारिशस' का विमोचन करके किया था।

श्री बखोरी जी मारिशस के प्रथम श्रेणी के कवि हैं और साथ ही सम्पूर्ण हिन्दी-जगत में एक सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। उनके अब तक चार कविता-संग्रह प्रकाश में आये हैं, जिनके नाम प्रकाशन-क्रम से इस प्रकार हैं—'मुझे कुछ कहना है', 'बीच में बहती धारा', 'नशे की खोज में' तथा 'सांप भी, सपेरा भी', इन में तीसरा संग्रह 'नशे की खोज में' राजपाल एंड सन्स ने हाल में प्रकाशित किया है। और इसका भारतीय समीक्षकों ने प्रशंसा-भरे शब्दों में स्वागत भी किया है। इससे पहले 'गंगा की पुकार' नामक गद्य-रचना को 'आभा' प्रकाशन ने प्रकाशित किया था। तथा इसी ग्रन्थ का उन्हीं के द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद 'कॉल आफ दी गॉजल' विकास-प्रकाशन-गृह से निकला।

बखोरी जी ने वैसे गद्य-लेखक के रूप में किशोरावस्था में ही लेखन-यात्रा आरम्भ की थी, जब वे 14 वर्ष के थे। उनका प्रथम लेख "हिन्दी-भवन" की हस्त लिखित पत्रिका, "दुर्गा" में सामने आया लेकिन कविता संसार में, उन्होंने अपने जीवन के चौथे दशक के आरम्भ में, कदम रखा और सजग कविता-प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया। बखोरी जी एक मौलिक कवि हैं। शायद ही उनकी कविताओं पर किसी प्रसिद्ध कवि का प्रभाव पाठक पायेंगे। "टेलीफोन" और "अपोलो ग्यारह" उनकी प्रेम कविताएं हैं, जिन्हें पढ़ने के बाद जल्दी भुलाया नहीं जा सकता है। "टेलीफोन" नामक कविता में प्रसिद्ध अमेरिकी फिल्म-निर्माता, अल्फ्रैड हिचकॉक का नाम रूपक के रूप में प्रयोग करके उसे हिन्दी कविता में अमर बना दिया है। "अपोलो ग्यारह" शीर्षक कविता में चन्द्रमा के धरातल पर पायी जानेवाली खाइयों को चेचक भरे चेहरे की उपमा देकर उन्होंने दूर की कोड़ी लगा दी। यह कविता पहले पहल "धर्मयुग" में अपोलो 11 के छोड़ने के अवसर पर छपी थी। प्रस्तुत लेखक को यह अच्छी तरह याद है कि मारिशस में अपने भ्रमण-काल में श्री शिवमंगल सिंह "सुमन" को इन दो कविताओं ने कैसे मन्त्र-मुग्ध किया था, इनका परिचय पाने के पश्चात्।

उनके प्रथम तीन संकलनों की कविताओं में मानव-जीवन की विडम्बना, मानव-सम्बन्धों तथा मानव-प्रकृति के परिष्कार की गहरी ललक पायी जाती है। चौथे संकलन में बखोरी जी सामाजिक तथा राजनीतिक सापेक्ष अधिक दिखाई देते हैं विसंगतियों ने उन्हें अधिक चुभन दिया है। इसीलिये राजनीतिक-सामाजिक कुरूपताओं पर व्यंगपूर्ण प्रहार किये बिना उनसे रहा नहीं गया। लेकिन यह सब उन्होंने कुंठारहित होकर और आतंकवादी के आक्रोश के बिना किया। प्रस्तुत संकलन में

नारायण पत दसोई

"सांप भी और सपेरा भी" शीर्षक कविता का यह अंश उनके इस स्वस्थ्य व्यक्तित्व को दर्शाता है :—

सांप भी हूं निराला
नचा नहीं सकता सपेरा
सुन सुन बीन मैं दंश मारता हूं
मारने को नहीं जिलाने को

इस संकलन में व्यंगपूर्ण कविताओं को छोड़ कर कुछ दूसरे प्रकार की रस-सिद्ध तथा संवेदनशील कविताएं भी हैं, जिनमें एक उनके विवाह की रजत-जयन्ती के अवसर पर लिखी गई कविता है इस कविता के पढ़ने पर सहृदय पाठक को ऐसी अनुभूति होती है, मानों वह किसी उपत्यका के शिखर पर बैठा है और नीचे मन्द-मन्द गति से मोतियों की लड़ी के सदृश्य कोई शीतल, उज्जवल चश्मा बहता हुआ निहार रहा हो।

प्रस्तुत संकलन में भी उनके पूर्ववर्ती तीन संकलनों की भांति 50 कविताएं हैं। इसका सम्पादन मारिशस के शीर्षस्थ और भारत में सुपरिचित कहानीकार, उपन्यासकार तथा कवि श्री अभिमन्यु अनंत ने किया। प्रकाशक हैं, महात्मा गांधी संस्थान।

12, सुकदेओ बिस्सूनदयाल स्ट्रीट, पार्ट लूईस, मारिशस

वातायन

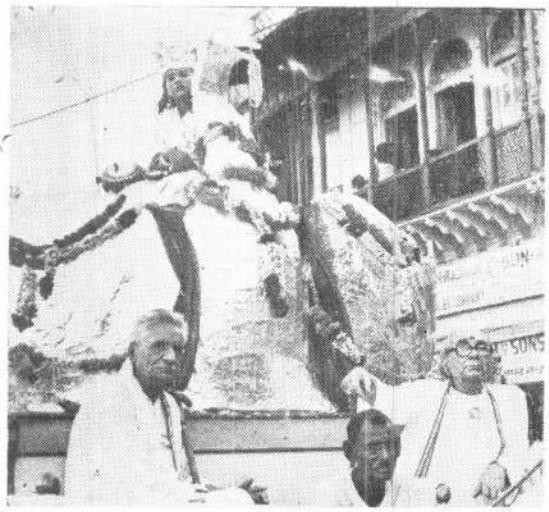

14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के अवसर पर दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी शोभा यात्रा आयोजित की।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का 41 वां अधिवेशन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, का, इकतालीसवां वार्षिक अधिवेशन कुरुक्षेत्र में एक जुलाई से तीन जुलाई तक सम्पन्न हुआ। बुंदेलखंड विश्वविद्यालय के कुलपति डा० हरवंशलाल शर्मा अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इसका उद्घाटन सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी बाबू गंगाशरण सिंह ने किया।

अधिवेशन के दौरान साहित्यपरिषद में डा० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने अपने 30 पृष्ठीय लिखित भाषण में अनेक मुद्दे उठाए। लेखक के दायित्व के उन्होंने दो रूप बताए। पहला साहित्य सृष्टि और दूसरा—अपने साहित्य में व्यक्त मान्यताओं के अनुरूप जीवन। इस अवसर पर प्रभाकर माचवे, डा० विजयेन्द्र स्नातक, श्री लक्ष्मीकांत वर्मा और अन्य साहित्यकारों ने भी चर्चा मे भाग लिया।

राष्ट्रभाषा परिषद के सभापति थे—श्री मधुकरराव चौधरी, जो तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के कार्याध्यक्ष भी हैं। श्री राव ने आह्वान किया कि हम सब कृतसंकल्प हों। किसी के ऊपर हावी होने के लिए नहीं, आक्रमण करने के लिए नहीं बल्कि हमारी राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय एकता को धक्का देने वाली परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए भाषायी संघर्ष नही, भाषायी सहयोग का एक नया आंदोलन शुरू करें और उसे यशस्वी बनाएं।

इस अवसर पर आठ हिन्दी सेवियों सर्वश्री अक्षयकुमार जैन, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' प्रभाकर माचवे, रामानन्द तिवारी, जी० सुन्दर रेड्डी, बाबू गंगाशरणसिंह श्रीमती सरोजनी महिषी और डा० कंचनलता सभरवाल को सम्मेलन की ओर से साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

□ केशवानन्द ममगाई
—सहदेव मार्ग, कुरुक्षेत्र 5—132118

P & T. Regd. No. D (DN)/05
Licenced (DN)-49 to post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi R.N. 701/57

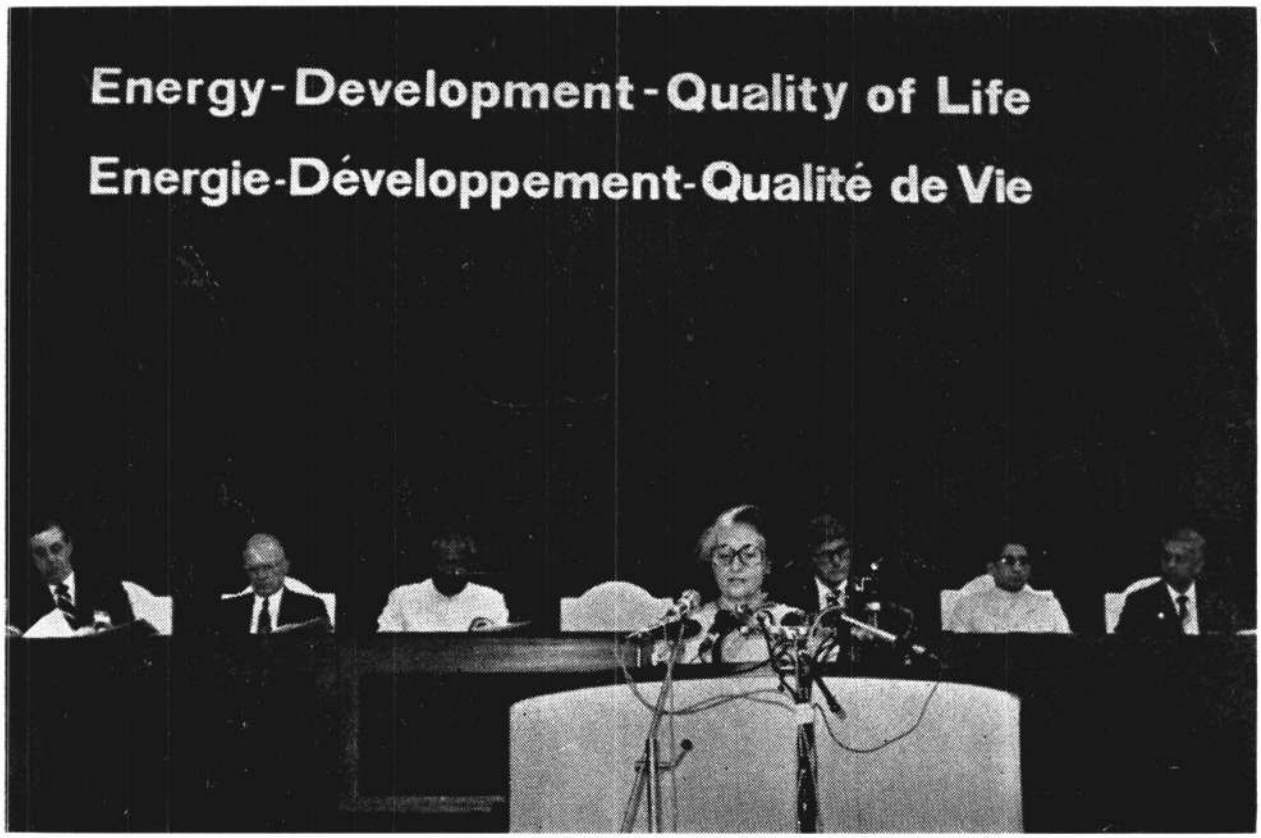

18 सितम्बर, 1983 को प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने नई दिल्ली में विश्व ऊर्जा सम्मेलन के 12वें अधिवेशन का उद्घाटन किया।
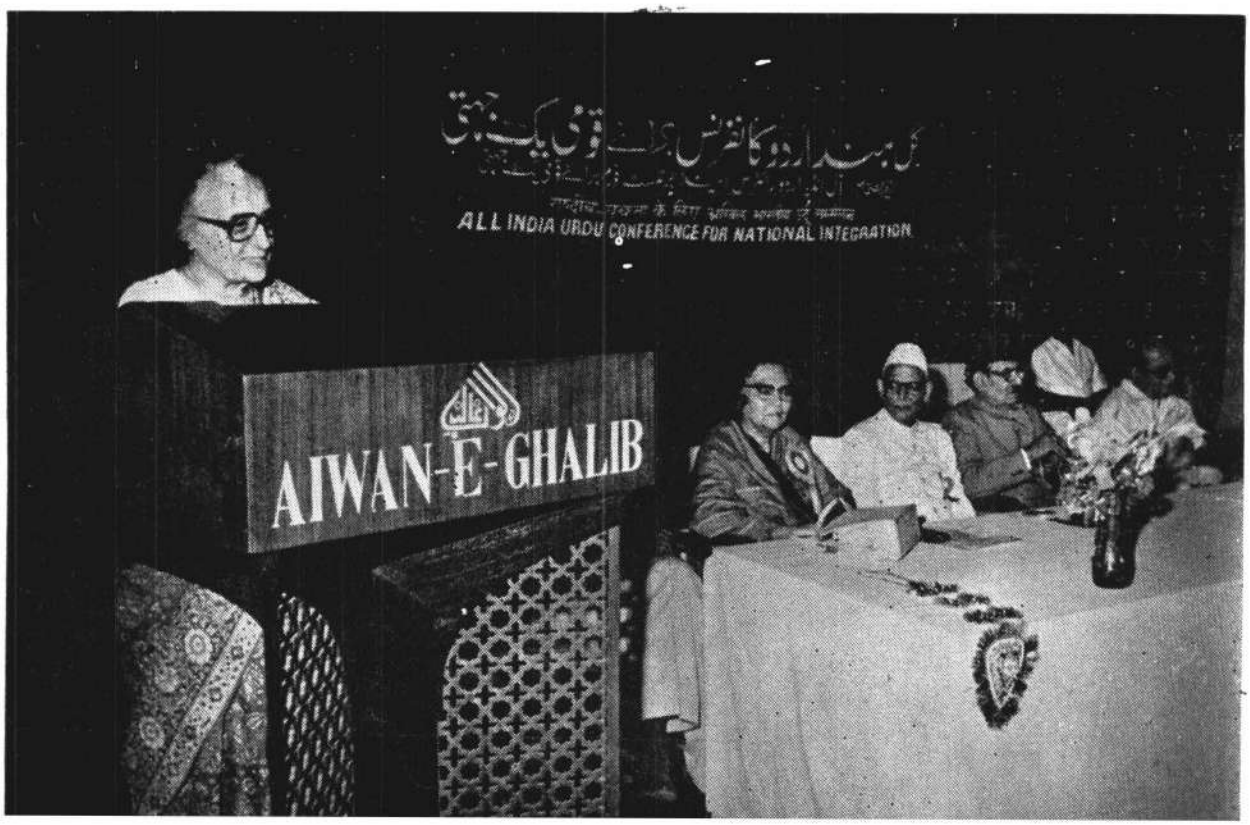
राष्ट्रीय एकता के लिए अखिल भारतीय उर्दू सम्मेलन गत 6 सितम्बर को नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया।